चित्ररेखा

[मलिक मुहम्मद जायसी कृत प्रेमकाव्य]

एकबोल

आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

(हिन्दी विभाग) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संपादक

साहित्याचार्य प० शिवसहाय पाठक

एम० ए०, साहित्यरत्न

वाराणसी

पूज्य गुरुवर आचार्य

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी

के

कर-कमलों में

सादर समर्पित

--शिवसहाय पाठक

"जब लगि बिरह न होइ मन, हिये न उपजइ प्रेम ।
तब लगि हाथ न आव तप, करम-धरम-सत-नेम ।।"

★

"दई मान उपराजा, सोग मौह सुखभोग ।
अवस तें मिलै बिछोही, जिन्ह हिय होइ वियोग ।।"

"लिखा तो बरतन्ह रहै, जो लिखि जानै कोइ ।
लेखनहारा बापुरा, गलि-गलि माटी होइ ।।"

"चित्ररेखा" से

लेखक की अन्य कृतियाँ —

१ अर्चना के गीत (कविताएँ)
२ पदमावत का काव्य-सौन्दर्य (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)
३ प्राचीन काव्य-सौरभ (सपादित)
४ आधुनिक काव्य-सौरभ (सपादित)
"धर्मचक्र" (मासिक पत्रिका) के सहसपादक

विषय-निर्देशिका

एक बोल

हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल में सूफी मुसलमान कवियों ने प्रेम गाथाओं की रचना जनभाषा में करके जीवन के कई नैसर्गिक तथ्यों को एक साथ प्रमाणित कर दिया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि यदि कोई अपनी वाणी का प्रसार चाहता है तो उसे जनभाषा का ग्रहण अनिवार्य रूप से करना ही होगा। उन्होंने पुष्ट किया कि जीवन में मुख्य सर्वसामान्य-भावसत्ता है तथा उस सत्ता को स्वीकार करनेवाला जातिगत बाह्य भेदभाव का निश्चय ही परित्याग कर देगा। उन्होंने समर्थित किया कि किसी देश में बस जानेवाले के लिए उसकी संस्कृति से प्रभावित होना अनिवार्य है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि यदि कट्टरपन बाधक नहीं है, तो समन्वय की भावना अवश्य जगेगी और समंजसता के लिए प्रयास भी होगा ही। इन सूफी कवियों ने जनभाषा ही नहीं स्वीकृत की, जनता में प्रचलित कथाओं का भी संग्रहण किया। छंद भी इन्होंने उसी भाषा के सर्वप्रचलित ही अपनाए। यहाँ की साहित्य-परंपरा की भी कुछ अपेक्षित विधियाँ सकारीं। उन्होंने अपनी जातीय और धार्मिक कुछ प्रवृत्तियों का न्यास यदि उनमें न किया होता, तो उनमें से बहुतों की कृति के स्थूल एवं बाह्य निरीक्षण से कोई सहसा यह अनुमान नहीं कर सकता था कि ये प्रेमगाथाएँ मुसलमानों द्वारा प्रणीत हैं।

सूफियों की इन रचनाओं को शुद्ध साम्प्रदायिक या धार्मिक कहकर कुछ व्रतवी इन्हें हिन्दी-साहित्य के परिसर के बाहर कर देने की सलाह देने लगे हैं। इस संबंध में निवेदन है कि यदि किसी धार्मिक रचना में धर्मोपदेश कांतासंमित पद्धति पर किया गया है, तो साहित्य उसका देशनिकाला नहीं कर सकता। हाँ, जीवन की नैसर्गिक सरणि का आख्यान उसमें प्रत्यक्ष होना चाहिए। कहते हैं कि हिन्दी में तुलसीदास की कृतियों में यथास्थान धर्मोपदेश सुहृद्संमित पद्धति पर सूरदास और मलिक मुहम्मद जायसी से अपेक्षाकृत अधिक है। ऐसा कहनेवाले यह देखते

नहीं कि तुलसीदास ने वैसा करते हुए भी उपदेशांश और साहित्यांश को पृथक्-पृथक् रखने का भी प्रयास किया है। दोनों का सांकर्य बहुधा बचाया है। राम ही परात्पर ब्रह्म हैं यह सिद्ध करना यदि उनका प्रयोजन न होता तो उनकी कृतियाँ निश्चय ही पृथक्-पृथक् होतीं। साहित्य और धर्म का वैसा मेल न होता जैसा विवशता से कहीं कहीं हो गया है। कहा गया कि जहाँ तक धार्मिक उपदेश-तत्व के नियोजन का प्रश्न है हिन्दी के उपर्युक्त तीन महात्माओं में से वह सबसे अधिक तुलसीदास में, उनसे कम जायसी में और सबसे कम सूरदास में दिखाई देता है। इस प्रसंग में देखना यह चाहिए कि जो भी नीति-तत्व किसी की कृति में सन्निविष्ट है वह शुद्ध धर्म-बुद्धि के उद्बोधार्थ ही है अथवा मन को सरस भी करता है। निराग्रह हो ध्यान देने से स्पष्ट हो जाएगा कि तुलसीदास जी कोरे उपदेष्टा नहीं जैसे कबीर थे। वे मानस की सरसता पहले चाहते हैं।

दूसरी जिस बात पर विचार करने की महती आवश्यकता है वह यह कि ये जो उपदेश देते भी हैं वे किसी संप्रदाय-विशेष की ओर आकृष्ट करने के लिए या मानव के सर्वसामान्य निर्विशेष सम्प्रदाय की दीक्षा देने के लिए। इनका लक्ष्य वस्तुतः उसी मानवतावाद की ओर जीवन को ले जाना था जिसकी पुकार में साहित्य के बने-ठने उपदेशक अपना गला फाड रहे हैं। तुलसीदास, सूरदास और जायसी तीनों की कृतियों में मानवतावादी एक-सी स्थिति है। किसी मतवाद के खंडन का जैसा जोश कबीर में है वैसा न तुलसीदास में, न सूरदास में और न जायसी में। तुलसीदास ने तो 'वेद-विरोधी' भगतों का कुछ प्रत्यक्ष खंडन भी किया है, पर सूरदास की प्रक्रिया प्रत्यक्ष सर्पण पर नहीं है। जायसी का तो मानो खंडन से कोई सरोकार ही नहीं। कबीर का अखंड खंडन सामने न आता तो तुलसीदास और सूरदास को अपना-अपना खंडनवद्धमाव उपस्थित करने की अपेक्षा ही न होती। सामयिक आवश्यकता से प्रेरित होकर ही उन्हें ऐसा कुछ कहना पड़ा है। राजमार्ग को परित्यक्त कर कुपैंड़ जाने का खटका ही इनके मुंह खोलने का मुख्य हेतु है।

कथक्कड़ों ने जैसी कल्पना की है क्या सचमुच इन सबके प्रयत्न वैसे ही

असाहित्यिक है। कैसे कहें ! तुलसीदास ने 'मानस' का उद्घाटन साहित्य के मार्ग पर ही किया है। उसका मगलाचरण ही साहित्याचरण है। सूरदास ने बाललीला के रूप में जो कुछ दिया वह साहित्यशास्त्रियों के 'वत्सल रस' का अमोघ, अप्रतर्क्य उदाहरण हो गया कि उसकी रसवत्ता उसके अस्तित्व में रहते खडित ही नहीं हो सकती। तो क्या जायसी केवल सूफीमत से ही सरोकार रखते थे, फारसी काव्य से उनका कोई नाता-रिश्ता ही न था। हिन्दी के सूफी मुसलमान कवियों का हिंदी के क्षेत्र में कर्तृत्व कोरा तसव्वुफ का उपदेष्टृत्व नहीं है। वह यदि शुद्ध साहित्य की सर्जना नहीं है तो निष्केवल तसव्वुफ की उपासना भी नहीं। उनके समस्त प्रयासों में साहित्य की सवर्धना भी वहीं अपने प्रमुख रूप में है इस दृश्य-दर्शन की ओर से आँखें मूँद लेना न्याय न होगा। मलिक मुहम्मद जायसी के कर्तृत्व में शुद्ध तसव्वुफ भी है, तसव्वुफ और साहित्य का साहित्य भी है तथा तसव्वुफ और साहित्य में अगागी भाव भी है। जायसी के लगभग बीस ग्रथो के नाम शोध-खोज द्वारा ज्ञात हुए हैं। पर अभी तक केवल चार ही मुद्रित हुए हैं। आरभ में केवल पदमावत ही सामने थी। फिर अखरावट का पता चला। आखिरी कलाम का नाम तीसरे प्रयास में सामने आया। चौथे उपस्करण में महरीबाईसी मिली। यह पाँचवा प्रयत्न चित्ररेखा को खींच लाया। यदि शोध में उपलब्ध समस्त रचना उन्हीं की हो तो यह प्रतिपन्न है कि उनका शुद्ध साहित्यिक प्रयास भी पर्याप्त है।

जायसी एकमत से हिन्दी के सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। कुछ महानुभाव समझते हैं कि फकीर ने भला क्या इतना अधिक लिखा-पढा होगा। इससे उनकी नूतन उपलब्ध कृतियों को वे सदेह की दृष्टि से देखते हैं। जायसी के ग्रन्थ प्राय फारसी अक्षरों में मिलते हैं। इधर हिन्दी की खोज प्रमुखतया नागरी-अक्षरों वाले हस्तलेखों तक ही परिमित है। बहुत दिन पूर्व मेरे मित्र श्री हरिदत्त जी शर्मा ने सूचना दी थी कि जायसी के हिन्दी-जगत् को अज्ञात कई हस्तलेख जायस के श्री अशरफ कमाल के पास हैं। जायसी के ग्रथों के शोध के सबध में निकट अतीत में जो सत्प्रयास हुए उनमें आश्वस्त हो मैंने उधर हाथ ही नहीं बढ़ाया। पर मेरे कर्मठ शिष्य श्री शिवसहाय पाठक ने जायसी की कृतियों पर अनुसंधान

करते हुए उनकी प्रस्तुत नवीन कृति 'चित्ररेखा' का पता लगाया और फारसी अक्षरों में उसके दो हस्तलेखों के आधार पर संपादन भी कर डाला। उन्हें जायसी की कुछ अन्य अनुपलब्ध कृतियों का भी पता चला है। उद्योग कर वे हिन्दी-जगत् के समक्ष और भी सामग्री निकट भविष्य में उपस्थित करेंगे। जायसी की लिखी कई प्रेम-गाथाएँ हैं इस पर अचरज नहीं करना चाहिए। जान कवि ने भी बहुत सी छोटी बड़ी-मझोली आकृति की प्रेमगाथाएँ लिखी हैं।

प्रस्तुत चित्ररेखा से कई नवीन तथ्यों की उपलब्धि होती है। जायसी के वास्तविक गुरु नि.संदिग्ध रूप से कालपीवाले मुहीउद्दीन थे यह सिद्ध हो जाता है। साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि उन्होंने साहित्य को प्रमुख रूप से दृष्टिपथ में रखकर भी प्रेमगाथा लिखी है। 'पदमावत' की भाँति चित्ररेखा विषादात नहीं है। 'पदमावत' की विषादात स्थिति के संबंध में कहना पड़ता है कि वह लौकिक दृष्टि से विषादात है, पर पारलौकिक दृष्टि से प्रसादात। चित्ररेखा के उपसंहार से तो इस प्रकार के कथन की भी अपेक्षा नहीं रह गई है। जायसी-ग्रंथावली के वैज्ञानिक संपादन की छानबीन से सिद्ध हुआ है कि 'पदमावत' के अंत में उसे आख्या-पदेशिक रचना सिद्ध करनेवाली जो वचनावली जुड़ी हुई थी वह जायसी की नहीं है। आगे चलकर उसके व्याख्याकारों या संशोधकों द्वारा जोड़ी गई है। सूफीमत के विशेष आग्रह के कारण सब प्रकार की रचनाओं में अन्यापदेश कल्पित किए जाते थे। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हकायके हिन्दी' में हिन्दी गीतों में प्रयुक्त शब्दों की जो प्रतीकपरक व्याख्या की गई है उससे इस प्रवृत्ति के स्वरूप और इसकी प्राचीनता का भी पता चलता है। सूफियों की इस मनोवृत्ति से लाभ लाभ उठाकर कुछ रहस्य-रसिक सिद्ध करना चाहते हैं कि हिन्दी के मध्यकाल को केवल 'भक्तिकाल' कहना चाहिए। जिन रचनाओं को शृंगार की लौकिक रचना कहकर पृथक् किया जाता है और जिनकी प्रवृत्तियों का युग रीतिकाल या शृंगार-काल का बताया जाता है उनमें तथा भक्ति मूलक रचनाओं में वर्ण्य विषय का कोई अंतर नहीं, केवल शैली का अन्तर है। शैली का अन्तर भी विशेष रूप से छंदगत ही है। उनकी तुला पर सूरदास और बिहारीलाल समान दिखाई देते हैं,

किसी की ओर का पलड़ा झुकता नहीं दिखता। उन्हें तुलसीदास और केशवदास में एक ही रंग झलकता है। परंपरा इनमें तारतम्य और भेद करती आ रही है, पर यह नई सूझ-बूझ उधर आँख भी नहीं उठने देती।

यह सत्य है कि सूफियों की प्रेमगाथाओं में रहस्यात्मक संकेत मिलते हैं। यह भी निश्चित है कि सूफियों की ऐसी गाथाएँ किसी न किसी रूप में कोई न कोई रहस्य-संकेत करती हैं। पर सारी की सारी रचना रहस्यमूलक है ऐसा सर्वांश के सूक्ष्म अवलोकन और समस्त रचनाओं के स्थूल आलोड़न से सिद्ध नहीं होता। सूफियों की प्रवृत्ति के अनुकूल इन रचनाओं में अन्त.पाती रहस्यात्मक अंश अवश्य होते हैं, पर ऐसी रचनाएँ प्रायः नहीं मिलती जो सारी की सारी आन्यापदेशिक हों अथवा कम से कम उनके प्रस्तुतकर्ताओं ने ऐसा नहीं कहा है। ऐसी स्थिति में इन रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन पूर्वग्रह से रहित होकर ही करने की आवश्यकता है।

श्री शिवसहाय पाठक जायसी पर प्रस्तुत किए गए 'पदमावत का काव्य-सौन्दर्य' नामक प्रबंध द्वारा अपनी सच्ची सहृदयता का परिचय पहले ही दे चुके हैं। अनुसंधान के क्रम में उन्हें जो नूतन सामग्री मिल रही है उसके संपादन और निरूपण में भी इन्होंने सच्चे अनुसंधायक की-सी तटस्थ वृत्ति का पूरा परिचय दिया है। इनमें जायसी की रचनाओं के संबंध में कार्य करने की भरपूर क्षमता है, क्योंकि ये फारसी लिपि के ज्ञाता हैं और सब प्रकार का कष्टसाध्य श्रम करने का इनमें अदम्य साहस है। 'चित्ररेखा' को संपादित-प्रकाशित कर साहित्यानुसंधाता के रूप का इन्होंने यथार्थ परिचय दिया है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि इनकी साधना शीघ्र ही सिद्धि में परिणत होगी और समग्र साहित्य-संसार को आकृष्ट करेगी। साहित्य-सेवा में इनका मन लगा है, तो सौभाग्य निश्चित है—

सेवा मई जाकर मन लागू। दिन दिन बाढ़ै अधिक सोहागू।

वाणी-वितान-भवन, विश्वनाथप्रसाद मिश्र
ब्रह्मनाल, वाराणसी १
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, २०१६

भूमिका

मलिक मुहम्मद जायसीकृत चित्ररेखा छोटा-सा अवधी काव्य है जिसमें पदमावत के समान ही सात अर्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम है। जायसी का प्रधान महाकाव्य पदमावत ही उनका कीर्ति स्तम्भ है। उसके अतिरिक्त अख-रावट, आखिरी कलाम एवं कहारनामा (जिसे श्री माताप्रसादजी ने 'महरी-बाईसी' नाम दिया था) भी 'जायसी-ग्रंथावली' के अतर्गत मुद्रित हो चुके हैं। अब से लगभग ३ वर्ष पूर्व जिस समय पदमावत की संजीवनी टीका मुद्रित हो रही थी, मुझे सूचना मिली थी कि हैदराबाद के सालारे-जंग पुस्तकालय में फारसी लिपि में लिखी हुई एक पोथी है जिसमें नाम जायसीकृत चित्ररेखा की पाडुलिपि है। उस समय मैंने अनुमान किया था कि यह चित्ररेखा संभवत चित्रावत ग्रंथ है जिसका उल्लेख श्री सैयद आले मोहम्मद ने जायसी के ग्रंथों की सूची में किया है। वह सूची इस प्रकार है—

१ पदमावत २ अखरावट ३ आखिरी कलाम ४. मुकहरानामा (इकहरा-नामा) ५. सखरावत ६ चम्पावत ७ इतरावत ८. मटकावत ९. चित्रावत १०. खुर्वानामा ११ मोराईनामा १२ मुखरानामा १३ पोस्तीनामा १४. होलीनामा।

इसके अतिरिक्त श्री हसन अस्करी ने जायसी के ग्रंथों में लहरावत और सकरा-नामा का भी उल्लेख किया है। (श्री शिवसहाय जी को 'मसला' नामक जायसी की एक अन्य कृति भी प्राप्त हुई है)

इस सूचना को पढ़कर श्री शिवसहाय पाठक ने हैदराबाद जाकर सालारे-जंग पुस्तकालय में बड़ी तत्परता से चित्ररेखा पुस्तक की फोटो लिपि प्राप्त की। सौभाग्यसे उन्हें अहमदाबाद के एक सज्जन के पास चित्ररेखा की दूसरी प्राचीन प्रति का पता लगा और वे उसे प्राप्त करने में भी सफल हो गए। इन्हीं दो प्रतियोंके आधार पर श्री पाठक जी ने विद्वत्तापूर्ण ढंग से चित्ररेखा का यह संस्करण तैयार किया है।

हिन्दी ससार की ओर से जायसी के इस नये ग्रंथका सानन्द स्वागत है। उस युग के महाकवि स्वविरचित एक या दो महाग्रथों के अतिरिक्त और भी छोटे-मोटे काव्य-रूपो को चरितार्थ करने के लिए कुछ लिखा करते थे। कबीरकृत रमैनी, कहारनामा, विरहुली आदि इसके उदाहरण है। गुसाई जी ने भी रामलला नहछू, बरवै रामायण, जानकीमगल आदि फुटकर काव्यों की रचना करके उसी परिपाटी का पालन किया था। जायसी कृत अखरावट, कहारनामा, आखिरी कलाम और चित्ररेखा आदि ग्रथ उसी प्रकार के हैं। यह सभावना है कि भविष्य में होलीनामा पोस्तीनामा, लहवावत, मटकावत आदि तथाकथित जायसी के ग्रथो की प्रतियां भी कहीं उपलब्ध हो सकें।

वर्तमान चित्ररेखा छोटी-सी प्रेम कहानी है, पर यह पढने में अत्यत रुचिकर है और सर्वथा जायसी की भाषा के साँचे में ढली हुई है, दैव की कृपा से शोक के भीतर से कभी-कभी सुख का अद्भुत सयोग उत्पन्न हो जाता है और जो सच्चे प्रेमी हैं उनका विछोह आनन्द में बदल जाता है। यही इस छोटे-से प्रेम काव्य का मार्मिक सन्देश है—

> 'दई औंन उपराजा, सोग माँह सुख भोग।
> अवस ते मिलैं बिछोही, जिन्ह हिय होइ वियोग ॥

दुख में सुख का भोग उत्पन्न हो जाय, तो इसे भगवान् की कृपा ही कहना चाहिए। वह कृपा जो सच्चे प्रेमी की प्रेम-परीक्षा के बाद अनायास सुलभ होती है।

चित्ररेखा काव्य की कहानी सक्षिप्त और सीधी है आरभ में कवि ने पदमावत के ढग पर ईश्वर की वन्दना की है। उस ईश्वर की सत्ता काष्ठ में अग्नि और दूध में घी के समान है जो मन देकर उसे मथता है वही उसे जानता है। जो पहले भौंर के समान केतकी के काँटे में अपना-हृदय प्रेम की व्यथा से छेद लेता है वही दुख सहन के बाद उस रसको पाता है जैसे चीटा गुड को—

> "अगिनि काठ घिव खीर सो कथा।
> सो जानी जो मन दइ मथा ॥"

इसके बाद मुहम्मद साहब और चार यारों का वर्णन करके पूरे दो दोहों में जायसी ने अपनी दोनों गुरु परंपराओं का उल्लेख किया है। पहले इन्होंने सैयद अशरफ़ जहाँगीर चिश्ती (कछौछा वाले) को अपना प्यारा पीर कहकर अपने आपको उनके द्वार का मुरीद कहा है। पदमावत में उन्हें संसार का मखदूम कहकर जायसीने अपने आपको उनके घर का बन्दा बताया है। पदमावत के अनुसार सैयद अशरफ़ की परंपरा में हाजी शेख हुए जो सैयद अशरफके दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी थे। उनका पूरा नाम हाजी नूरुल-ऐन अब्दुल रज्जाक था। चित्ररेखा में उन्हींके स्थान पर हाजी अहमद का उल्लेख आया है। इन हाजी शेख के वंशमें दो प्रसिद्ध संत हुए। एक शेख मुबारक और दूसरे शेख कमाल। चित्ररेखा में भी इन दोनों का वर्णन है।

दूसरी परंपरा के अनुसार कालपी के शेख बुरहान जायसी के गुरु थे उनका उल्लेख चित्ररेखा में और उनकी गुरु-शिष्य परंपरा का विस्तृत वर्णन पदमावत (दो० २०) एवं अखरावट (दोहा २७) में आया है। इस परंपरा के अनुसार सैयदराजे हामिद शाह मानिकपुर के बहुत बड़े सूफी संत थे। उनके शिष्य दानियाल खिज्री थे, एवं उनके शिष्य सैयद मोहम्मद महदी हुए जिनका १५०४ ई० में देहान्त हुआ। उनके शिष्य शेख अलहदाद थे और उनके शिष्य शेख बुरहान कालपी वाले हुए जो महदी की परंपरा में होने के कारण स्वयं भी महदी गुरु कहलाए। चित्ररेखा में जो यह कहा है—"महदी गुरु शेख बुरहानू।
कालपि नगर तेहिक अस्थानू॥"

वह पदमावत की निम्नलिखित चौपाइयों पर प्रकाश डालता है—

गुरु महदी सेवक मैं सेवा।
चलै उताइल जिन्ह कर खेवा॥
अगुवा भएउ शेख बुरहानू।
पथ लाइ जेहि दीन्ह गियानू॥ (पदमावत २०। १-२)

इसमें यह सिद्ध हो जाता है कि कालपी के शेख बुरहानू के बाद कोई महदी गुरु नाम के संत जायसी के गुरु नहीं थे, बल्कि शेख बुरहान के दादागुरु और शेख

अलहदाद के गुरु सैयद मोहम्मद महदी के विरुद के अनुसार स्वय शेख बुरहान ही महदी गुरु इस विरुद से प्रसिद्ध हो गए थे।

इसके अनन्तर जायसी ने कहा है कि वे चित्ररेखा की कहानी को कविता-बद्ध कर रहे हैं। चन्द्रपुर नगर में चन्द्रभानु नाम का राजा था। उसका नगर गोमतीके तीर पर बसा था। राजा की ७०० रानियों में प्रधान रूपरेखा थी जिसकी कोख से चित्ररेखा का जन्म हुआ। यही चित्ररेखा चन्द्रपुर में जन्म लेकर पीछे कन्नौज के राजकुमार को ब्याही गई। जब चित्ररेखा बडी हुई, तो उसके पिता ने वर खोजने के लिए अपने दूत भेजे। वे ढूँढते हुए सिंहद देश के राजा सिंघनदेव के यहाँ पहुँचे और उसके कुबडे बेटे के साथ सबध तै कर दिया।

इधर सुप्रसिद्ध कन्नौज नामकी राजधानी में कल्याण सिंह नामके राजा ने पुत्र के लिए बहुत तप किया। तब उनके यहाँ राजकुमार का जन्म हुआ। वह बड़ा वीर और गुणी था, किन्तु उसकी आयु केवल २० वर्ष की थी। जब उसे इस बात का पता लगा और उसकी आयुके केवल अढाई दिन शेष रह गए, तो वह राजपाट छोड कर घोड़े पर सवार हो काशी में अन्त गति लेने के लिए चल पडा। उधर राजा सिंघनदेव अपने कुबडे पुत्र का विवाह कुमारी चित्ररेखा के साथ करने के लिए आए। राजा उसी बाग में आकर उतरे जहाँ कन्नौज का राजकुमार एक पेड़के नीचे सो रहा था। राजकुमार उठा तो सिंघनदेवने उसके पैर पकड लिए और उसकी पुरी और नाम पूछा और उससे विनती की कि हम इस नगर में ब्याहने आए हैं हमारा वर कुबडा है तुम आज रात ब्याह कराकर कल काशी चले जाना। यह कहकर विवाह का कगन उसके हाथ में बाँध दिया और उसे मगलाचार के नये कपडे पहना दिए। इसी समय चन्द्रपुर के चन्द्रभानु राजा के दूत आ गए और दूल्हे को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बारात को ले जाकर उसी के साथ विवाह करा दिया। रात को जब धवलगृह के सातवें खड पर पति-पत्नी ने एक पलग पर शयन किया, तो प्रीतमसिंह कुँवर के हृदय में अपनी आसन्न मृत्यु का स्मरण करके बडी व्याकुलता हुई। उसे नींद नही आई और वह पीठ देकर लेटा रहा। जब राज-कुमारी सो गई, तब उसने उसके अचल पर यह लिखकर अपनी राह ली—"मैं

कन्नौज के राजा का पुत्र हूँ। विधाता का लेख अमिट है। २० वर्ष की आयु मुझे मिली थी, अब वह पूरी हो गई है। मैं सहज स्वभाव से काशी जा रहा था कि मित्रदेव ने आकर मेरा तुम्हारे साथ विवाह करा दिया। नहीं जानता कि इससे तुम्हारा क्या लाभ हुआ। कल दोपहर के पहले काशी में मेरा मोक्ष गति हो जायगी।' यह लिखकर वह घोड़े पर बैठकर काशी को चल पड़ा जब प्रातःकाल चित्ररेखा की सखियाँ आईं, तो उन्होंने उस बाल का सब शृंगार मधुना देखा और जाकर पूछा कि तुम्हारा वह प्रियतम कहाँ है। चित्ररेखा ने कहा—'हे सखियों, मैं कुछ नहीं जानती। मुझे उसका दर्शन नहीं मिला। मैंने उसकी पीठ ही देखी।' यह कहते हुए उसकी दृष्टि अंचल पर लिखे हुए अक्षरों पर पड़ी और उसने कहा—'कुँवर तो सहज स्वभाव से काशी चले गए। अब मैं अप्सरा बनकर उनकी सेवा करूँगी और चिता पर चढ़कर उनसे स्वर्ग में मिलूँगी।' इतना कहकर उसने अपना सिधोरा मंगवाया और माँग में सिंदूर भरकर एवं पति के पट के अंचल में गाँठ जोड़कर वह चिता में बैठ गई और कहने लगी —'हे प्रियतम, जो तुमने मुझे इस प्रकार भुला दिया है, तो मैं भी तभी सच्ची पतिव्रता कहलाऊँगी, जब अपने आप को भस्म करके तुमसे मिलूँगी।'

उधर प्रीतम कुँवर ने काशी पहुँचकर अपने मरण के लिए चिता बनाई और मरने से पहले खूब दान देना शुरू किया। उसके दान की बात सुनकर अनेक तप-जप करने वाले सिद्ध महात्माओं ने आकर उसे घेर लिया। उन्हीं में व्यास जी भी आए। जब कुँवर ने दान की मुट्ठी भरकर उन्हें भी दी, तो व्यास जी के मन में प्रेम उमड़ आया और उनके मुख से 'चिरंजीव, चिरंजीव' का आशीर्वाद निकल पड़ा। सुनते ही राजकुमार ने उनकी ओर देखा और कहा—'कौन मुझे चिरंजीव कह रहा है मैं तो जलने के लिए चिता पर बैठा हूँ? कौन ऐसा समर्थ गुसाईं है जो मुझे चिरंजीवी बनाएगा? यदि जीवन मोल मिल सकता होता, तो किसी को भी देते हुए न खटकता। पर वही कहीं मिलता नहीं। इतने पर भी जो तुमने मरते हुए मुझे जीवन का आशीर्वाद दिया है इससे मुझे ज्ञात होता है कि तुम कोई बड़े पिता या पालक हो—जिनके दर्शन का सौभाग्य मुझे मिला है। गुणी नारद्रिक

मुझे प्राप्त हुआ है जो ज्योतिषियों के कथन को झूठा करके मरने वाले मुझे फिर जीवित करना चाहता है।' यह सुनकर व्यास ने भी अपने मन में वह सब समझकर कहा—'मेरे मुंह से जो निकल गया वह अन्यथा न होगा। तुम्हारे लिए विधाता ने इसी प्रकार का शुभ भविष्य लिखा था। मैं व्यास हूँ जिससे तुम्हारी भेंट हुई है। ब्रह्मा ने ही मेरे मुख से ऐसा कहलाया है और चिरंजीव आशीर्वाद के द्वारा तुम्हारे जीवन की अवधि को बढ़ाया है। हे कुँवर, अब चिता से उतरकर घर जाओ। तुम्हारा नया जन्म हो गया है। राजकुमार व्यास का नाम सुनकर अंग-अंग से प्रसन्न हो गया। इस प्रकार जीवन प्राप्त होते ही उसके चित्त में राजकुमारी चित्ररेखा का स्मरण हो आया और वह सोचने लगा—'यदि वह अपने कुल-धर्म की लज्जा के अनुसार कहीं सती हो गई, तो मेरा जीवन व्यर्थ हो जायगा।' यह सोचकर वह तुरन्त चितासे उतरा और व्यासजीके चरण छूकर और घोड़े पर चढ़कर चन्द्रपुर की ओर चला। वहाँ क्या देखता है कि चित्ररेखा भी चिता पर बैठी है और अंचल पर लिखे हुए अक्षर पढ़कर सोच रही है—'प्रियतम के मरण की जो घड़ी है वह आ जाय, तो मैं भी चिता में आग देकर प्रियतम के साथ ही जल जाऊँ।' जैसे ही वह घड़ी पूर्ण होने को आई और वह यह इच्छा कर रही थी कि आग लेकर चिता में लगा दूं उसी समय नगर में राजकुमार के आने का शोर मच गया। उसकी दृष्टि चित्ररेखा से मिली और राजकुमारी के हाथ की अग्नि हाथ में ही रह गई। लज्जा से उसने अपना सिर ढँक लिया। और वह चिता से उतर कर राजमंदिर में चली आई। इस प्रकार दैव की इच्छा से कभी शोक में सुख-भोग उत्पन्न हो जाता है और जिनके हृदय में वियोग की अग्नि है वे विछोही एक दूसरे से मिल जाते हैं।

इस सुन्दर रचना के उद्धार के लिए प्रो॰ शिवसहाय जी पाठक ने जो शोधपूर्ण विद्वत्ता एवं तत्परता के साथ परिश्रम किया है उसके लिए हम उन्हें बधाई देते हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय — डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल

वाराणसी

卐

निवेदन

आज से दो वर्ष पूर्व सागर विश्वविद्यालय में 'जायसी और उनका काव्य' की प्रबन्ध-निर्देशिका बनाते समय मैंने आचार्य पं० नन्ददुलारे जी वाजपेयी से कहा कि मुझे जायसी कृत 'चित्ररेखा' की एक हस्तलिखित (फारसी अक्षरों वाली) प्रति मिली है। उन्होंने उसके सम्पादन का आदेश दिया और कहा कि 'प्रबन्ध' में चित्ररेखा पर एक अध्याय होना आवश्यक है। प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन उन्हीं के आदेश का फल समझना चाहिए।

पूज्य गुरुवर आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अत्यन्त कृपापूर्वक 'एक बोल' लिखकर मुझे उपकृत किया है। उन्होंने पांडुलिपि की 'प्रेस-प्रति' और हस्तलिखित प्रतियों को आद्यंत देखकर बहुमूल्य सुझाव भी दिए। पूज्य गुरुवर डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने चित्ररेखा की फोटो-स्टेट प्रतियों और पांडुलिपि को देखकर मुझे प्रोत्साहित किया। बहुत दिन हुए जब मैंने पहली बार इसे संपादित किया, तो कई प्रोफेसर, दो तीन डाक्टर और कुछ अन्य लोगों ने हास्य-व्यंग्य द्वारा मुझे निराश करना चाहा, किन्तु इधर जब मुझे दो-एक अन्य प्रतियों का संधान मिला, तो मैंने इस काम को पूर्ण किया। डा० शर्मा ने अनेक प्रकार से मेरी सहायता की और प्रोत्साहन देते हुए इस ग्रंथ के प्रकाशन की व्यवस्था की। मैं इन गुरुओं के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापित करने की धृष्टता नहीं कर सकता—श्रद्धावनत हूँ।

हैदराबाद के श्रीराम शर्मा से मुझे ज्ञात हुआ कि 'चित्ररेखा' की एक प्रति उस्मानिया विश्वविद्यालय में है। बाद में पता चला कि वह प्रति श्री राजकिशोर पांडेय के पास है। श्री राजकिशोरजी पांडेय की प्रति देखने पर मुझे ज्ञात हुआ कि यह सालारजंग-संग्रहालय वाली प्रति ही है 'चित्रावत' या 'चित्ररेखा' नहीं। श्री पांडेय जी से मुझे इतना अवश्य ज्ञात हुआ कि उस्मानिया विश्वविद्यालय वाली प्रति पूर्ण है। उस प्रति में सालारजंग-संग्रहालय वाली प्रति से पचास से ऊपर अर्धालियाँ और लगभग दस दोहे अधिक हैं। इसके लिए मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

कुछ शब्दों के अर्थ के सिलसिले में डा० मोती चन्द ने कृपापूर्वक मेरी कठिनाइयों को दूर किया—मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल से और उनकी सजीवनी टीका से मुझे अनेक (पदमावतकी) सूचनाएँ, सुझाव एवं सहायताएँ मिली हैं—इसके लिए मैं उनका उपकृत हूँ।

मैं श्रद्धेय भाई चन्द्रवली जी का अनुगृहीत हूँ जिन्होंने 'चित्ररेखा' की बहुमूल्य प्रति मुझे पर्याप्त समय के लिए दी। मैं सालारे-जंग-संग्रहालय, हैदराबाद के श्री इस्माइल आदि महानुभावों का आभारी हूँ जिन्होंने इस संग्रहालय वाली 'चित्र-रेखा की 'फोटो-स्टेट कापी' देकर मेरी सहायता की है।

श्रद्धेय पं० हरिशंकर द्विवेदी (संपादक, नवभारत टाइम्स), प्रोफेसर प्रभात (बम्बई), डा० मुंशीराम शर्मा (कानपुर), श्री परमानन्द वाजपेयी (सागर), श्री रामलषण जी शुक्ल, श्री गौरी शंकर पांडेय आदि के 'चित्ररेखा' के प्रकाशन से संबद्ध प्रोत्साहन एवं स्मृतियाँ बड़ी सुखद हैं, मैं हृदय से इन विद्वानों का आभारी हूँ।

'प्राक्कथन' लिखने में जिनसे और जिनकी कृतियों से मुझे तनिक भी सहायता मिली है और जिनके मतों का मैंने खंडन-मंडन किया है—उन सब विद्वानों के प्रति मेरी श्रद्धा है।

श्री ओम् प्रकाश जी बेरी का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इसके समुचित प्रकाशन की व्यवस्था करने की कृपा की है।

अन्त में चित्ररेखा के प्रकाशन के साथ मैं गुरुवर आचार्य पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी के चरणों की वन्दना करता हूँ। मूलतः जायसी के अध्ययन की ओर अपनी प्रवृत्ति को मैं उन्हीं के आशीष का फल समझता हूँ।

अपने सुधी पाठकों से निवेदन है कि जैसी भी हो सकी 'चित्ररेखा' उनके सामने है। इसकी अपनी महत्ता है क्योंकि यह कृति जायसी के एक विलुप्त अध्याय का उद्घाटन करती है। अवश्यमेव एक-दो और प्रतियों के मिलने पर अगले संस्करण में चित्ररेखा शाणोल्लीढ होकर अपनी सौन्दर्य-ज्योति विकीर्ण करेगी—ऐसा विश्वास है। अपने वर्तमान रूप में भी इसकी भास्वरता क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति' को चरितार्थ करती है इसमें संदेह नहीं।

वाराणसी
नवमी, चैत्र शुक्ल २०१६ वि०

शिवसहाय पाठक

प्राक्कथन

महाकवि जायसी—(अंतःसाक्ष्यों एवं बहिः साक्ष्यों के आधार पर जायसी का जीवन)—

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के सम्बन्ध में लिखा है—

"भा अवतार मोर नव सदी
तीस बरस ऊपर कवि बदी" ।[1]

पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि "इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। नव सदी ही पाठ मानें तो जन्मकाल ९०० हिजरी (सन् १४९२ के लगभग) ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म से ३० वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।"[2] डा० जयदेव की जायसी के जन्मतिथि से सबद्ध मान्यता है कि 'मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म ९०० हिजरी (सन् १४९५ ई०) में हुआ था जिसका वर्णन उन्होंने 'भा अवतार मोर नव सदी' (आखरी कलाम) में किया है।'[3] डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने लिखा है—"जायसी का जन्म ९०६ हिजरी में हुआ था। जायसी ने यह बात स्पष्ट बतला दी है। वे कहते हैं:—

नौ सौ बरस छतिस जब भए।

तब एहि कथा के आखर कहे। (जा० ग्रं० पृ० ३८८) अर्थात् ९३६ हिजरी में उन्होंने आखिरीकलाम की रचना की।

भा अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी॥ (जा० ग्रं० पृ० ३८४)

अर्थात् तीस वर्ष की आयु में उन्होंने यह रचना की और वे नव सदी में पैदा हुए थे। ९३६ हिजरी में से तीस वर्ष निकाल देने पर ९०६ हिजरी आता है।

---

१. जायसी ग्रन्थावली (डा० माताप्रसाद गुप्त) (आखिरी कलाम)
२. जायसी ग्रंथावली ना० प्र० सभा, काशी, पृष्ठ ५.
३. सूफी महाकवि जायसी, डा० जयदेव, पृष्ठ ३१.

६११ हिजरी में एक बहुत बडा भूकंप आया था और सू -ग्रहण भी ६०८ हिजरा में पडा था । जायसी इन घटनाओं को वयस्क होने पर कह सकते थे कि वे उनके जन्म के समय में हुई थी । 'नव सदी' का अर्थ या तो कवि को ठीक-ठीक न मालूम था या 'नई सदी' से ही उसका तात्पर्य था । नव शब्द का प्रयोग 'नए' के अर्थ में कवि ने अनेक स्थलो पर किया है । ६०६ के लिए कवि यह कह सकता था कि उसका जन्म एक नई सदी में हुआ था । और यह भी हो सकता है कि कवि 'नव सदी' का अर्थ ६००के बाद का समय समझता हो । आखिरी कलाम के साक्ष्य से यह ६०६ हिजरी जन्म सन् इतना स्पष्ट निकलता है कि सहसा उस पर बिना किसी अति प्रबल प्रमाण के अविश्वास नही किया जा सकता है ।"[1]

सैयद कल्बे मुस्तफा ने लिखा है—"कस्बा जायस में मुहम्मद जहीरुद्दीन बाबर शाह के अहद में सन् ६०० हिजरी (१४६५ ई०) में पैदा हुए ।"[2]

आखिरी कलाम में जायसी ने अपने सबध में स्वय लिखा है.—

"भा अवतार मोर नव सदी ।
तीस बरिख ऊपर कवि बदी ॥

आवत उधत चार बड ठाना । भा भूकंप जगत अकुलाना ॥
धरती न्हि चक्र विवभाई । फिरै अकास रहँटकै नाईं ॥" आदि[3]

"नवीं सदी हिजरी (१३६८–१४६४ ई०) के बीच में किसी समय जायसी का जन्म हुआ। नव सदी से यह अर्थ लेना कि ठीक ६०० हिजरी में जायसी का जन्म हुआ या कवि के जीवन की अन्य तिथियो से संगत नहीं ठहरता । पदमावत की रचना सन् १५२७ से १५४० के बीच में किसी समय हुई । उस समय वे अत्यंत वृद्ध हो गए थे। अतएव १४६४ ई० को उनका जन्म संवत् मानना कठिन है" ।[4]

१. म० मु० जायसी, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० १६
२. म० मु० जा० (सैयद कल्बे मुस्तफा)
३. जा० ग्रं० (डा० माता प्रसाद गुप्त) पृ० ६८८.
४. पदमावत, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ३२.

वस्तुतः नवसदी से ९०० हिजरी अर्थात् १४९३ या १४९४ ई० को जायसी की जन्मतिथि मानने में कवि के जीवन की अन्य तिथियों से संगति नहीं बैठती ।

डा० कमल कुलश्रेष्ठ का यह कथन कि "नवसदी' का अर्थ या तो कवि को ठीक-ठीक नहीं मालूम था या नई सदी से ही उसका तात्पर्य था, " स्वयं में असंगत है । एक तो जायसी जैसे अत्यन्त समर्थ भाषाविद् और महाकवि के लिए इस प्रकार के कथन समीचीन नहीं हैं और दूसरे नवसदी से नई सदी अर्थ लगाने की बात समझ में नहीं आती । ऐसा मानने पर तो "नई सदी के अनुसार नव सदी नहीं,बल्कि दस सदी होना चाहिए । उनकी मान्यता वाला संवत् ९०६ हिजरी भी ठीक नहीं है, क्योंकि तब नवीं नहीं वरन् दसवीं शताब्दी थी ।

जायसी ने अपने जन्म संवत के आस-पास एक बड़े भूकंप का उल्लेख किया है । ९११ हिजरी (सन् १५०५) में एक भयंकर भूकंप[८] आगरे में आया था । बाबर-नामा और अल्बदायूनी के 'मुन्तखबुत्तवारीख' से भी स्पष्ट है कि ९११ हिजरी में एक भूकंप आया था, किन्तु यह वह नहीं हो सकता जिसका जायसी ने उल्लेख किया है । मनेरशरीफ से पदमावत की शाहजहाँ-कालीन हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है । उसमें अखरावट भी है । अखरावट की पोथी के नीचे सन् ९११ हिजरी दिया हुआ है। जिस मूल प्रति से वह नकल की गई थी संभवतः उसी का सन् १५०५ ई० (९११ हिजरी) था । प्रतिलिपिकार ने उसे ज्यों का त्यों उतार दिया है । जायसी उस तिथि से बहुत पहले जन्म ले चुके होंगे ।"[९]

जायसी के जन्म सन् से संबद्ध विवेचना की तालिका इस प्रकार है.—

८. डा० ईश्वरी प्रसाद, एशार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया पृ० २३२ "दूसरे वर्ष १५०५ ई० में आगरा में एक भयंकर भूकंप आया था । इसने धरती को कँपा दिया और अनेकानेक सुन्दर इमारतों और मकानों को धरा-शायी बना दिया ।"

९. पदमावत, प्राक्कथन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ३२.

८३० हिजरी (नवी सदी हिजरी में तीस वर्ष बीतने पर) १४२७ ई० पं० चद्रवली पाडेय[1]

९०० हिजरी	१४९२ ई० के लगभग	(पं० रामचद्र शुक्ल)
९०० हिजरी	१४९५ ई०	(डा० जयदेव)
९०६ हिजरी		(डा० कमलकुल श्रेष्ठ)
९०० हिजरी	१४९५ ई०	(सैयद कल्बे मुस्तफा)
नवी सदी हिजरी	१३९८-१४९४ ई० के बीच किसी समय।	(डा० वासुदेवशरण अग्रवाल)

इन सभी मतों का तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि जायसी का जन्म नवी सदी हिजरी के बीच में किसी समय हुआ था। ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी की तिथि को जायसी का जन्म संवत् मानना ठीक नही होगा, क्योकि मनेर शरीफ वाली प्रति के साक्ष्य पर अखरावट ९११ हिजरी में (१५०५ ई०) लिखा जा चुका था। अतः स्पष्ट है कि जायसी इस तिथि से बहुत पहले जन्म ले चुके होंगे।

स्पष्ट ही यह प्रश्न अधिक गभीर विवेचना की अपेक्षा करता है।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने जायसी का जन्म काल ९०६ हि० माना है। इस सन् की सगति है कि जायसी ने पदमावत की रचना २१ वर्ष की आयु में की या प्रारंभ की, किन्तु यह बात सभव नही प्रतीत होती। यों पदमावत में ही कुछ पक्तियाँ ऐसी है जिनके साक्ष्य पर पदमावत की रचना के समय जायसी वृद्ध हो चले थे या वृद्ध थे—

"मुहमद बिरिध बएस अब भई। जोबन हुत सो अवस्था गई।
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनन्ह दै नीरू।।
दसन गए कै तुचा कपोला। बैन गए दै अनरुचि बोला।।
बुद्धि गई हिरदै बौराई। गरब गएउ तरहुँत सिर नाई।।

१. ना० प्र० पत्रिका, भाग १४, पृ० ३६७.

राजन गए ऊँच दै सुना । गारी गएउ सीस मा धुना ॥
भवँर गएउ केसन्ह दै भुवा । जोबन गएउ जियत जनु मुवा ॥
तब लगि जीवन जोबन साथीं । पुनि सो मीचु पराए हाथीं ॥
बिरिध जो सीस डोलावै सीस धुनै तेहि रीस ।
बूढ़े आड़े होहु तुम्ह केइँ यह दीन्ह असीस ।"

यह एक प्रकार से अन्तर्विरोध है और इसी कारण ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी को जायसी की जन्मतिथि मानना उचित नहीं जँचता ।

यहाँ पर एक बात और द्रष्टव्य है कि जायसी की मृत्यु-तिथि के भी विषय में अनेक सन् दिए गए हैं—

कई विद्वान् जायसी की मत्यु-तिथि १६५६ ई० मानते हैं ।[1] श्री गुलाम सरवर लाहोरी इनकी मत्यु-तिथि १६३६ ई० मानते है ।[2] श्री "काजी नसरुद्दीन हुसैन जायसी ने, जिन्हें अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सनद मिली थी अपनी याद-दाश्त में मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्युकाल ४ रजब ९४९ हिजरी (सन् १५४२ ई०) दिया है ।"[3]

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "यह काल कहाँ तक ठीक है नहीं कहा जा सकता । इसे ठीक मानने पर जायसी दीर्घायु व्यक्ति नहीं ठहरते । परलोकवास ४९ वर्ष से भी कम अवस्था में सिद्ध होता है । पर, जायसी ने 'पदमावत' के उपसंहार में वृद्धावस्था का जो वर्णन किया है वह स्वतः अनुभूत जान पड़ता है ।

पं० चन्द्रबली[5] पांडेय का मत है कि काजी नसरुद्दीन हुसैन जायसी ने

१. जायसी ग्रंथावली (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) पृ० ५५५-५६.
२. ना० प्र० पत्रिका भाग २१ पृ० ५८.
३. खजीनतुल असफिया, सरवर, पृ० ४७३.
४. जा० ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ८.
५. ना० प्र० पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१७ (पं० चंद्रबली पांडेय का लेख)

जो मृत्यु (५ रजब ६४६ हिजरी अर्थात् १५४२ ई०) तिथि दी है वह ठीक और प्रामाणिक है।

ध्यान देने की बात है कि जायसी ने 'पदमावत' की सर्जना १५४० ई० के आस-पास की थी। अतः १६३६ ई० या १६५६ ई० को जायसी का मृत्युकाल मानना समीचीन नहीं है। ऊपर लिखा जा चुका है कि पदमावत की रचना के समय कवि वृद्ध हो चला था। वृद्ध होने के पश्चात् वह '६६ या ११६ वर्ष तक जीवित रहा" यह बात गले के नीचे नहीं उतरती।

सैयद कल्बे मुस्तफा ने लिखा है कि 'जिस वर्ष वे दरबार में बुलाए गए थे, उसी वर्ष उनकी मृत्यु हुई।'[1]

मुस्तफ़ा साहब ने गुलाम सरवर लाहौरी और अब्दुल कादिर के साक्ष्य पर जायसी की मृत्यु-तिथि सन् १०४६ हि० को ही स्वीकार किया है। इस बात को भी स्वीकार करने में अनेक बाधाएँ हैं। एक तो इस मत के अनुसार जायसी का जीवन काल लगभग १४६ वर्ष का ठहरता है। यदि यह असमभव नहीं तो असाधारण बात अवश्य है। किन्तु अंतः या बहिः किसी भी साक्ष्य से आज तक यह बात ज्ञात नहीं हुई कि वे लगभग डेढ़सौ वर्ष के होकर मरे; और "यदि वे १०४६ हि० तक वर्तमान थे और ६४७ हि० (१५४० ई०) में पदमावत की रचना कर चुके थे, तो शेष १०० वर्ष लम्बे अवकाश में अखरावट के अतिरिक्त अन्य पुस्तक का न लिखना उन जैसे क्रियाशील सूफी के लिए असमभव ही प्रतीत होता है। इस विवेचन के पश्चात् यह निश्चय ठीक प्रतीत होता है कि मलिक साहब ६४८ हिजरीमें राज्य की ओर से अमेठी आमन्त्रित किए गए और ६४६ हि० में उनका शरीरान्त हो गया।

६०० हि० या ६०६ हि० (क्रमशः पं० रामचन्द्र शुक्ल और श्री कमल कुलश्रेष्ठ के मतानुसार) के विरोध में एक और प्रबल तर्क है। पदमावत के स्तुति-खंड में कवि ने शेरशाह को आशीर्वाद देने का उल्लेख किया है—

---

१. मलिक मुहम्मद जायसी, सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० ७५.

दीन्ह अशीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज।
बादशाह तुम जगत के, जग तुम्हार मुहताज ॥

"दिल्ली की गद्दी पर बैठने के समय शेरशाह की अवस्था ५३–५४ वर्ष की हो चुकी थी। शेरशाह बादशाह को आशीर्वाद देने वाला कवि अवश्य वृद्ध रहा होगा। इसलिए पदमावत के अंतिम छंद में कवि का स्वत अनुभूत वृद्धावस्था का वर्णन मानना ही ठीक है। पदमावत लिखते समय जायसी वृद्ध हो चुके होंगे।"[1] श्री इंद्रचंद्र नारंग का विचार है कि "उनका जन्म नवीं शताब्दी हिजरी में अर्थात् १३९८ और १४६४ ई० के बीच कभी हुआ।" इसलिए ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी को जायसी का जन्म काल नहीं माना जा सकता।[2]

१९५२-५३ ई० में श्री सैयद हसन अस्करी को मनेर शरीफ़ से कई ग्रंथों के साथ पदमावत और अखरावट की प्रतियाँ प्राप्त हुईं। 'अखरावट' की प्रति की पुष्पिका में जुम्मा ८ जुलकाद, ९११ हिजरी का उल्लेख है। प्रो० अस्करी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और श्री गोपाल राय के अनुसार सम्भवतः जिस मूल प्रति से यह प्रति लिखी गई थी, उसकी पुष्पिका में यह तिथि लिखी हुई थी, जिसे प्रतिलिपिकार ने ज्यों का त्यों उतार दिया है। इन विद्वानों का विचार है कि श्री मनेर शरीफ की इस प्रति के साक्ष्य पर 'अखरावट' का रचनाकाल ९११ हि० माना जा सकता है।' अखरावट जायसीकी प्रथम रचना थी। "जिस भूकंप का उल्लेख जायसी ने आखिरी कलाम में किया है और जिसे डा० कमल-कुल श्रेष्ठ, श्री परशुराम चतुर्वेदी, आदि विद्वानों ने जायसी के जन्म के समय घटित मान लिया है—उससे भी यह सिद्ध हो जाता है कि जायसी कृत अखरावट का रचना काल ९११ हिजरी है।— इन विद्वानों ने यह बतलाया है कि यह भूकंप जायसी के जन्म के समय हुआ था। तारीखे-दाऊदी (अब्दुल्लाह) मखज़ने अफ़ग़ाना (नियमतुल्लाह) और मुनतख़बुत्तवारीख़ (बदायूनी) के अनुसार ९१०–११ हि०में उत्तर भारत में एक भयानक भूकंप हुआ था। और कदाचित्

१. पदमावत-सार, इन्द्रचंद्र नारंग, पृ० ३. (कवि-परिचय)
२. वही।

इससे इतनी हानि पहुँची थी कि इतिहासकारों ने भी, जो इस प्रकार की घटनाओं पर विशेष ध्यान नहीं देते, इसका उल्लेख किया है।"[1] यदि अखरावट के भूचाल-वर्णन को ध्यान से पढ़ा जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे जायसी ने इस भूकंप को स्वयं देखा हो।—भूचाल का विस्तृत वर्णन इस बात का संकेत है कि जायसी ने उसे देखा और उसकी विकरालता का अनुभव किया था।"[2]

अखरावट के अध्ययन और उपर्युक्त मतों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर लगता है कि जब जायसी ने अखरावट की सर्जना प्रारंभ की उसके थोड़े ही समय पूर्व भूकंप हुआ था। हम इस बात को स्वीकार-अस्वीकार नहीं करते कि जायसी के जन्म के समय भूकंप हुआ था या नहीं, किन्तु यह स्पष्ट है कि अखरावट में जिस भूकंप का उल्लेख है उसमें और ९१० हि० के आसपास आए हुए भूकंप में साम्य है "और यह आकस्मिक नहीं प्रतीत होता।"

"जायसी ने जानबूझकर इसका वर्णन किया है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि अखरावट जायसी की प्रथम रचना है और यह ९११ हि० में लिखी गयी। अतः जायसी का जन्म काल ९०० हि० या ९०६ हि० मानना असंभव हो जाता है, क्योंकि ५ या १० वर्ष की अवस्था में 'अखरावट' जैसे सिद्धान्तप्रधान ग्रंथ की रचना संभव नहीं है।"[3]

उपर्युक्त वक्तव्य से या 'बीस बरिस ऊपर कवि बदी' से यह तो नहीं स्पष्ट होता कि अखरावट कवि की प्रथम कृति है, किन्तु मनेर शरीफ वाली प्रति की पुष्पिका के सन् का अवश्य महत्व है।

पूर्वांकित पंक्तियों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रो० अस्करी, श्री इन्द्रचन्द्र नारंग आदि के मतों का उल्लेख किया जा चुका है कि ये विद्वान् 'नव सदी' का अर्थ ८०१ हिजरी से ९०० हिजरी तक का समय लेते हैं अर्थात् इसी सौ वर्ष के बीच किसी समय जायसी का 'अवतार' हुआ था।

१. दी-जर्नल आफ दी-बिहार-रिसर्च सोसाइटी, (प्रो० सैयद हसन अस्करी,) भाग ३९, पृ० १९.
२. हिन्दी अनुशीलन, श्री गोपालराय, पृ० ६.
३. हिन्दी अनुशीलन, श्री गोपालराय, पृ० ६.

स्वर्गीय पं० चन्द्रबली पाडेय ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में एक लेख लिखकर अपने मत की पुष्टि की थी। वे मानते हैं कि जायसी की जन्मतिथि नवीं सदी में तीस वर्ष बीतने पर मानी जानी चाहिए अर्थात् ८३० हिजरी या १४२७ ई० जायसी का जन्मकाल है।

यदि ३० हिजरी को जायसी का जन्मकाल मान लिया जाय, तो उनकी उम्र ११९ वर्षों की ठहरती है। जायसी जैसे महान् संत के लिए यह अवस्था असंभव नहीं है।

इस मत को मान लेने में एक भारी अड़चन उपस्थित होती है। पदमावत का रचना काल १५४० ई० निःसंदिग्ध है। यदि पं० चंद्रबली पाडेय के मतानुसार ८३० हि० को जायसी का जन्मकाल स्वीकार करें, तो इसका अर्थ हुआ कि पदमावत की रचना (९४७ हि०) के समय उनकी अवस्था ११७ वर्षों की थी। अर्थात् जायसी ने ११७ वर्ष की अवस्था में इस ग्रंथ की रचना प्रारंभ की। जायसी ने पदमावत में जिस प्रकार की वृद्धावस्था का वर्णन किया है वह संभवतः इसी अवस्था की वृद्धावस्था है ?

मनेर शरीफ वाली प्रति के साक्ष्य पर अखरावट का रचना-काल ९११ हि० है, ९११ हि० में से तीस हिजरी वर्ष घटाने पर ८८२ हिजरी (१४७७ ई०) आता है और जब कवि अखरावट में कहता है कि "भा अवतार मोर नव सदी
तीस बरिस ऊपर कवि बदी"

तो स्पष्ट हो जाता है ८८२ हिजरी (१४७७ ई०) के लगभग ही जायसी का अवतार हुआ था। इस गणना के अनुसार मृत्यु के समय जायसी की अवस्था लगभग ६८-७० वर्ष की थी। अर्थात् उनकी मृत्यु लगभग ७० वर्ष की आयु में ४ रजब ९४९ हिजरी (सन् १५४२ ई०) में हुई ?

जायसी की मृत्यु के विषय में भी अनेक कथाएँ हैं। कहा जाता है कि शाह बोदले की अनुमति से 'मुहम्मद' अमेठी आए और अमेठी के निकट के जंगल में उन्होंने अपना स्थान बनाया। एक दूसरा प्रवाद भी है कि जायसी अपने समय के एक बड़े सिद्ध फ़क़ीर माने जाते थे और चारो ओर उनका बड़ा मान था। उनके

शिष्यों की संख्या भी बढ़ी। ये शिष्य 'पदमावत' के अंशों को गा-गाकर भिक्षा मांगा करते थे। एक दिन जायसी के एक शिष्य ने अमेठी-नरेश रामसिंह को नागमती का 'बारहमासा' सुनाया—

"कँवल जो विगसा मानसर, विनु जल गएउ सुखाइ।
सूखि बेलि पुनि पलुहै जो पिउ सींचै आइ॥"

उस भीख मांगने वाले से राजा ने पूछा कि यह किस कवि की रचना है, तो उसने बताया कि जायसी की। जायसी का नाम सुनकर राजा रामसिंह बड़े आदर से जायसी को अमेठी[1] ले आए। अपने जीवन के अंत समय तक जायसी अमेठी में ही रहे।

जायसी की मृत्यु के संबंध में सैयद कल्बे मुस्तफ़ा साहब ने एक बहेलिए द्वारा जायसी के मारे जाने की घटना का अत्यंत मनोरंजक वर्णन किया है। इस घटना का उल्लेख प० रामचन्द्र[2] शुक्ल ने भी किया है।

अमेठी-नरेश जब जायसी की सेवा में उपस्थित होते थे, तो उनका एक तुफ़-गची (बहेलिया) भी उनके साथ जाता था। जायसी इसका विशेष सत्कार करते थे। लोगों के कारण पूछने पर जायसी ने कहा कि 'यह मेरा कातिल है।' सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए। बहेलिए ने कहा कि इस पाप-कर्म के पहले ही मुझे कत्ल करा दिया जाए। राजा रामसिंह ने भी यह उचित समझा, किन्तु जायसी ने अत्यंत आग्रहपूर्वक अपने कातिल को कत्ल होने से बचा लिया। राजा ने उस दिन से उस बहेलिए को बंदूक, तलवार आदि न रखने की आज्ञा दी, किन्तु विधाता का लेख कौन मिटाता है? एक अँधेरी रात में जब बहेलिया राज भवन से अपने घर जाने लगा, तो दारोगा से कहा—समय तंग हो गया है और मेरी राह जंगल में होकर है इसलिए रातभर के लिए एक बंदूक दे दो, प्रातःकाल ही लौटा दूँगा। दारोगा ने भी उसमें कोई आपत्ति न की और एक बंदूक उस बहेलिए को दे दी।

---

१. म० मु० जायसी, सैयद कल्बे मुस्तफ़ा, पृ ३८
२ जायसी ग्रंथावली, ना० प्र० सभा काशी पृ० ८.

जब बहेलिया जंगल में होकर जाने लगा, तो उसे शेर के गुर्राने का-सा शब्द सुनाई दिया। शेर को पास जानकर उसने शब्द पर गोली छोड़ दी। शब्द भी बंद हो गया। बहेलिए ने शेर मरा जानकर घर की राह ली। उसी समय राजा ने स्वप्न देखा कि कोई कह रहा है कि आप सो रहे हैं और आपके बहेलिए ने मलिक साहब को मार डाला। राजा यह बात सुनकर घबड़ा गया। वह दौड़ा-दौड़ा जायसी के आश्रम के पास गया। राजा ने देखा कि मलिक साहब को गोली लगी है और उनका शरीर निर्जीव हो चुका है। इस दुर्घटना के कारण सारे राज्य में शोक छा गया। बाद में गढ़ के समीप ही उन्हें दफना दिया गया और उनकी समाधि बनवा दी गई।

यही कहानी मैंने थोड़े से हेरफेर के साथ जायस के लगभग एक दर्जन बुजुर्गों से सुनी है। उनमें से कुछ बुजुर्ग इस बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं

इस कथा से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि जायसी का अमेठी से बड़ा गहरा संबंध था। अमेठी के राजा की उनके ऊपर बड़ी श्रद्धा थी। वे अमेठी के पास के ही जंगल में रहते थे और किसी दुर्घटना के शिकार हुए।

जायसी की कब्र अमेठी-नरेश के वर्तमान कोट से पौन मील की दूरी पर है, यह वर्तमान कोट जायसी की मृत्यु के काफी बाद में बना है। अमेठी के राजाओं का पुराना कोट जायसी की कब्र से डेढ़ कोस की दूरी पर था। "अतः यह प्रवाद कि अमेठी के राजा को जायसी की दुआ से पुत्र उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने कोट के पास उनकी कब्र बनवाई निराधार है।"[1]

'कोटके समीप' का अर्थ कोट के अत्यंत निकट ही नहीं होता—कोट से कुछ दूर भी होता है। जायसी की कब्र देखने से लगता है कि कब्र से कुछ ही दूरी पर अमेठी का कोट रहा होगा डेढ़ कोस की दूरी पर नहीं। यह दूरी अधिक से अधिक डेढ़ मील मानी जा सकती है। और यदि वैज्ञानिक चश्मे को उतार कर भारतीय परम्परा और सिद्धत्व की दृष्टि से विचार करे, तो जायसी की दुआ से अमेठी-नरेश को पुत्र होने वाली बात भी ठीक मानी जा सकती है।

---

१. जा० ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ८.

नाम-जीवन-व्यक्तित्व——

'मलिक' अरबी भाषा का शब्द है। अरबी में इसके अर्थ स्वामी, राजा, सरदार आदि होते हैं। 'मलिक' (म ल क) धातु से व्युत्पन्न बताया जाता है। इससे बने अनेक शब्द हैं जैसे मलक–फरिश्ता, मुल्क–देश, मिल्क– सम्पत्ति, मलिक– बादशाह, सुल्तान। फारसी भाषा में मलिक का अर्थ है अमीर और बड़ा व्यापारी।"[1]

विद्वानों का विचार है कि मलिक मुहम्मद जायसी के पूर्वज अरब थे और वे भारत में आकर बस गए थे। इनके माता-पिता के विषय में कहा जाता है कि वे जायस के कचाने[2] मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था। इन्हें कुछ लोग मलिक राजे–अशरफ भी कहा करते थे।

सैयद कल्बे मुस्तफ़ा साहब[3] ने लिखा है कि इनकी माताका नाम मालूम नहीं है, शेख अलहदाद इनके नाना थे। इनका वास्तविक नाम'मुहम्मद' है। मलिक इनके वंश की उपाधि परंपरा है और जायस से संबद्ध होने के कारण इन्हें जायसी कहा जाता है। इस प्रकार इनका पूरा नाम है मलिक मुहम्मद जायसी।

जायसी को कुरूप और काना कहा जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि वे जन्म से ही ऐसे थे, पर अधिकांश विद्वानों का विचार है कि शीतला या अर्द्धांग-रोग से उनका शरीर विकृत हो गया था। जनश्रुति है कि बालक 'मुहम्मद' पर शीतला का भयंकर प्रकोप हुआ। माता-पिता को निराशा हुई। मां ने पाक–साफ दिल से शाहमदार की मनौती की। पीर की दुआ, बालक बच गया, किन्तु इस बीमारी के कारण उसकी एक आंख जाती रही, उसी ओर का बायाँ कान भी जाता रहा। अपने काने होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है—

---

१. नूरुल्लुगात, भाग ४. पृ० ४६७.

२. ना० प्र० पत्रिका, भाग २१, पृ० ४६

३. म० मु० जायसी, सैयद कल्बे मुस्तफ़ा, पृ० २०.

"एक नयन कवि मुहमद गुनी ।
सोइ विमोहा जेइ कवि सुनी ॥[1]
जग मूझा एकै नैनाहा ।[2]
"बदन जइस जग चंद सपूरन, सूक जइस नैनान ।" (चित्ररेखा)

जायस की प्रसिद्ध जनश्रुति है कि जायसी एक बार शेरशाह के दरबार में गए थे । शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देखकर हँस पड़ा । सुल्तान का हँसना दरबारियों के अट्टहास्य का साधन था । सारा दरबार ठहाकों से गूँज उठा, जायसी ने अत्यंत शान्त स्वर में कहा—"मोहिं काँ हँससि, कि कोहरहि ?" अर्थात् तू मुझ पर हँसा या उस कुम्हार (गढ़नेवाले-ईश्वर) पर ?" इस पर शेरशाह अत्यंत लज्जित हुआ । उसने जायसी के चरणों पर गिरकर क्षमा की प्रार्थना की । कुछ विद्वानों का कहना है कि वे शेरशाह के दरबार में नहीं गए थे, शेरशाह ही उनका नाम सुनकर उनके पास आया था ।

इस दैवी प्रकोप को भी जायसी ने ईश्वर का अनुग्रह ही माना—

"मुहमद बाईं दिसि तजी एक सरवन एक आँखि ।
जब ते दाहिन होइ मिला बोलु पपीहा पाँखि ।"[3]

वे वाममार्ग को स्वीकार नहीं करते और यही मूलभूत कारण है कि उन्होंने बाईं दिशा ही त्याग दी । जबसे उनका प्रियतम उनके अनुकूल हुआ (दाएँ हुआ) तब से उन्होंने एक श्रवण—एक दृष्टि वाली वृत्ति अपना ली अर्थात् उन्होंने एक का ही सुनना शुरू किया और एक का ही देखना भी शुरू किया । जायसी ने लिखा भी है–

एक नैन कवि मुहमद गुनी । सोइ बिमोहा जेइ कवि सुनी ॥
चाँद जइस जग बिधि औतारा । दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा ॥
जग सूझा एकइ नैनाहाँ । उवा सूर जस नखतन्ह माहाँ ॥

---

१. जा० ग्रं०, मा० प्र० गुप्त, पृ० १२३
२. वही,
३. वही,

जौ लहि अंबहि डाभ न होई । तौनहि सुगंध बसाइ न सोई ॥
कीन्ह समुद पानि जौ खारा । तौ अति भएउ असूझ अपारा ॥
जौं सुमेरु तिरसूल विनासा । भा कंचनगिरि लाग अकासा ॥
जौ लहि घरी कलंक न परा । काँच होइ नहिं कंचन करा ॥
एक नैन जस दरपन, औ तेहि निरमल भाउ ।
सब रूपवंत पाँव गहि, मुख जोवहिं कै चाउ ॥"[१]

एक आँख वाले 'मुहम्मद' का काव्य जिसने सुना, वही मोहित हो गया। उन्होंने मानो अपने एकांगी रूप पर सोचा—अवश्य ही ब्रह्माने एक आँख और एक कान हरण करके मुझे कुरूप बना दिया। किन्तु विधाता जिसे कलंक देता है उसे कोई न कोई महान् वस्तु भी देता है। उसने चाँद को कलंक दिया है, किन्तु इस कलंक के साथ उसने चाँद को उज्ज्वल भी तो बनाया है। इसी तरह उसने मुझे भी काव्य-गुण दिया है। इस एक ही आँख से मुझे सारा संसार दिखाई देता है। इस एक आँख का तेज नक्षत्रों में शुक्र के समान है अथवा यह एक आँख वाला मुहम्मद नक्षत्रों में सूर्य के समान उदित हुआ है। आम की जिस सुगंधि से सारा कानन महँमहँ हो उठता है उससे पहले आम में नुकीली डाभ का जन्म आवश्यक देखा जाता है। मीठे पानी के सरोवर तो छोटे-छोटे होते हैं, किन्तु विधाता ने समुद्र में खारा जल भर दिया है, इसी से तो उसका अंत नहीं दिखाई देता अर्थात् खारे जल के ही कारण उसे विधाता ने असीम-अनंत बना दिया है। सुमेरु गिरि पर त्रिशूल (वज्र) का प्रहार हुआ, इसी से तो वह सोने का पहाड़ बनकर आकाश से संलग्न हो गया। यह तो प्रकृति का नियम है कि गुण के साथ दोष और दोष के साथ गुण मिला ही रहता है। जब तक रासायनिक प्रक्रिया में घरिया में कलंक नहीं पड़ता, तब तक काँच शुद्ध कांचन की कला को नहीं प्राप्त करता। विधाता ने मुझे विकृत शरीर बनाकर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है, क्योंकि इसी एक नेत्र से मैंने सारा संसार देखा है। यह दर्पण जैसा है इसका भाव अत्यंत निर्मल है।

१. जा० ग्र०, डा० माता प्रसाद गुप्त, पृ० १३४

इस एक आँख वाले के पैरों का स्पर्श बड़े-बड़े रूपवाले करते हैं और अत्यंत मुग्ध भाव से उसके मुह की ओर देखा करते हैं।

जो जायसी के मुँह की कुरूपता को देखकर हँसे थे वे ही उनके काव्य को सुनकर आँसू भर लाते हैं—

जेइ मुख देखा तेइ हँसा, सुना त आए आँसु ॥[1]

"वे एक किसान गृहस्थ के रूप में जायस में रहते थे। वे आरंभ से बड़े ईश्वर भक्त और साधु-प्रकृति के थे। उनका नियम था कि जब वे अपने खेतों में होते, तब अपना खाना वहीं मंगा लिया करते थे। खाना वे अकेले कभी न खाते; जो आस-पास दिखाई पड़ता उसके साथ बैठकर खाते थे। एक दिन उन्हें इधर-उधर कोई न दिखाई पड़ा। बहुत देर तक आसरा देखते-देखते अतंमें एक कोढ़ी दिखाई पड़ा। जायसी ने बड़े आग्रह से उसे अपने पास खानेको बिठाया और एक ही बरतन में उसके साथ भोजन करने लगे। उसके शरीर से कोढ़ चू रहा था। कुछ थोड़ा-सा मवाद भोजन में भी चू पड़ा। जायसी ने उस अंश को खाने के लिए उठाया, पर उस कोढ़ी ने हाथ थाम लिया और कहा 'इसे मैं खाऊँगा, आप साफ़ हिस्सा खाइए।' पर जायसी झट से उसे खागए। इसके पीछे वह कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के उपरांत जायसी की मनोवृत्ति ईश्वर की ओर और भी अधिक हो गई। उक्त घटना की ओर संकेत लोग 'अखरावट' में बताते हैं—

"बुंदहि समुद समान यह अचरज कासौं कहौं।
जो हेरा सो हेरान मुहमद आपुहि आपु महँ ॥"[2]

जायसी ने अपने चार मित्रों का उल्लेख किया है—मलिक यूसुफ, सालार कादिम, सलोने मियाँ और बड़े शेख। संभवत जायस में ही उन्हें ये चार मित्र मिले थे। इन मित्रों में बड़े शेख सिद्ध पुरुष थे और यूसुफ मलिक भी बड़े पंडित

१. जा० ग्रं०, डा० माता प्रसाद गुप्त, पृ०. १३५

१. जा० ग्रं० पं० रामचंद्र शुक्ल, भूमिका, पृ० ७.

ज्ञानी थे। सालार कादिम और सलोने मियाँ युद्ध-वीर थे उन्होंने अनेक युद्धों में भाग लिया था।

चारि मीत कवि मुहमद पाए। जोरि मिताई सरि पहुँचाए ॥
यूसुफ मलिक पंडित औ ज्ञानी। पहिलै भेद बात उन्ह जानी ॥
पुनि सालार कादिम मति माहाँ। खाँडे दान उभै निति बाहाँ ॥
मियाँ सलोनें सिंघ अपारू। बीर खेत रन खरग जुझारू ॥
सेख बडे बड सिद्ध बखाने। कइ अदेस सिद्धन बड माने ॥
चारिउ चतुरदसौ गुन पढ़े। औ संग जोग गोसाई गढ़े ॥
बिरिछ जो आछहि चदन पासाँ। चदन होहि बेधि तेहि बासाँ ॥
मुहमद चारिउ मीत मिलि भए जो एकइ चित्त।
एहि जग साथ जो निबहा, ओहि जग बिछुरन कित्त ॥"[1]

सैयद कल्बे मुस्तफा[2] के अनुसार जायसी लूले और कुबडे भी थे "मलिक लूले, लंगडे और कुब्जा पुश्त भी थे।" किन्तु अभी तक प्राप्त हुए प्रमाणों और जायसी के चित्रों से यह बात प्रमाणित नहीं होती। पिता का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था। कुछ दिनों के पश्चात् माता का भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार वे बाल्यावस्था में ही अनाथ हो गए। फिर वे फ़कीरों और साधुओं के साथ रहने लगे थे।[3] किसी-किसी जनश्रुति में उनके वैवाहिक जीवन और पुत्रों का भी उल्लेख है।[3]

विशेष —जायसी अनाथ होकर साधु-फकीरों के साथ दर-दर भटकते फिरे। कुछ दिनों तक अपने ननिहाल मानिकपुर में अपने नाना अलहदाद के साथ रहे। बाल्यावस्था से साधु-फकीरों का संग मिला। इनकी बुद्धि तीव्र थी ही। सांसारिक कष्टों तथा दीन-हीन अवस्था ने उन्हें चिंतनशील और अंतर्मुखी बना दिया।" साराश यह कि मनुष्य को परम सत्ता की ओर आकृष्ट करने वाली परिस्थिति

१. जा० ग्र० डा० माता प्रसाद गुप्त, पृ० ११५
२. म० मु० जायसी, सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० २२.
३. ना० प्र० पत्रिका, भाग २१. ५ वही, पृ० ४३, वही पृ० ५०

मिलने पर जायसी ने अपनी सारी शक्ति उस ओर लगा दी।" संयोगवश उन्हें सुयोग्य गुरु भी मिल गये।

जायसी स्वर्गारोहण के समय अत्यंत वृद्ध (देखिए—पदमावत और चित्ररेखा के वृद्धावस्था के वर्णन) और संतानहीन थे। उनके 'सन्तति थी या नहीं' इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि उनके सात पुत्र थे। कहा जाता है कि वे सातों मकान की छत गिर जाने से दब कर मर गए[१]। इस दुर्घटना से जायसी और भी विरक्त हो गए। धीरे-धीरे वे अपने समय के एक सिद्ध फ़कीर माने जाने लगे।

जायसी के विषय में मीरहसन देहलवी ने अपनी मसनवी 'रमूजे-उल-आरफ़ीन' में लिखा है—

"थे मलिक नाम मुहम्मद जायसी।
वह कि पदमावत जिन्होंने है लिखी॥
मर्दे आरिफ़ थे वह और साहबकमाल।
उनका अकबर ने किया दरयाफ्त हाल॥
होके मुश्ताक बुलवाया शिताब।
ताकि हो सोहबत से उनकी फ़ैज़याब॥
साफ़ बातिन थे वह और मस्त अलमस्त।
लेक दुनिया तो है यह ज़ाहिर परस्त।
थे बहुत बदशक्ल और वह बदक़र्वा।
देखते ही उनको अकबर हँस पड़ा॥
जो हँसा वह तो उनको देखकर।
यों कहा अकबर को होके चश्मेतर॥
हँस पड़े माटी पर ऐ तुम शहरयार।
या कि मेरे पर हँसे बे-अख्तियार॥

१. ना० प्र० प० भाग २१, पृ० ५७.

कुछ गुनह मेरा नहीं ऐ बादशाह ।
सुर्ख बासन तू हुआ और मैं सियाह ।
असल में माटी तो है सब एक जात ।
अख्तियार उसका है जो है उसके साथ ।।
सुनते ही यह हर्फ रोया दादगर ।
गिर पड़ा उनके कदम पर आनकर ।।
अलगरज उनको व एजाजे तमाम ।
उनके घर भिजवा दिया फिर वस्ल लाम ।।
साहबे तासीर है जो ऐ हसन ।
दिल पर करता है असर उसका सुखन ।।[1]

चाहे यह दिल्ली का बादशाह अकबर हो चाहे अवध का कोई छोटा राजा अकबर[2] चाहे हुमायूं अथवा यह जनश्रुति ही क्यों न हो, किन्तु इससे इतना तो स्पष्ट है कि जायसी का बाह्य रूप आकर्षक न था। वे काने और कुरूप अवश्य थे। महात्मा तुलसीदास की ही भाँति इनकी भी बाल्यावस्था अनाथावस्था में बीती। इन्हीं कारणों से इनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो गई। इनके हृदय की नम्रता अपार थी। वे अपने विषय में कहीं भी कोई गर्वोक्ति नहीं लिखते। वे तो स्पष्ट कह देते हैं —

"हौं सब कबिन्ह केर पछिलागा। किछु कहि चला तबल देइ डागा[3]।"

वे यहाँ गर्वोक्ति नहीं करते। वे तो कहते हैं कि मैं सभी कवियों के पीछे-पीछे चलने वाला हूँ। नक्कारे की ध्वनि हो जाने पर मैं भी आगे वालों के साथ पैर बढ़ाकर कुछ कहने चल पड़ा हूँ।

उद्यान नगर या जायस नगर ("जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नावँ आदि उदयानू।।") में वे कुछ काल के लिए पाहुन बनकर आए थे। "यहाँ आकर

१. ना० प्र० पत्रिका, भाग २१, पृ० ४४-४५.
२. सूफी महाकवि जायसी, डा० जयदेव, पृ० ५४.
३. जा० ग्रं०, डा० माता प्रसाद गुप्त, पृ०.

उनके जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसने उनके जीवन के प्रवाह को ही बदल डाला और उन्हें अनुभव के एक नए लोक में पहुँचा दिया। उनके हृदय में वैराग्य की प्रथम किरण स्फुटित हुई। हृदय में कोई अपूर्व-ज्योति भर गई। उसी का रूप नेत्रों में समा गया। सर्वत्र उसी के दर्शन होने लगे। संसार के मानदण्ड बदल गए। विषयों से मन हट गया। हृदय में एक ही आकुलता छा गई कि किस प्रकार उस परम ज्योति या रूप की साक्षात् प्राप्ति हो। जायसी ने अपनी उस वैराग्य अवस्था का सच्चा वर्णन किया है—

सा वैराग बहुत सुख पाएऊँ ।।
सुख भा सोच एक दुख मानौं। ओहि बिनु जीवन मरन कै जानौं ।।
नैन रूप सो गएउ समाई। रहा पूरि भरि हिरदै छाई ।।
जहँवै देखौं तहवै सोई। और न आव दिस्ट तर कोई ।।
आपुन देखि देखि मन राखौं। दूसर नाहि सो कासौं भाखौं ।।
सबै जगत दरपन कर लेखा। आपुन दरसन आपुहि देखा ।।[1]

(आखिरी कलाम, १०।२–७.)

मलिक मुहम्मद जायसी अत्यंत सच्चरित्र, कर्तव्यनिष्ठ और गुरुभक्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी अपार आस्था थी। वे महान् संत थे। सहजता, सहृदयता, अनुभव-गंभीरता, वैदग्ध्य, लोक और काव्य का गहन अध्ययन, आडम्बर-हीनता, संयम और भक्ति उनके चरित्र के आकर्षण हैं।

गुरु परंपरा:—

मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परंपरा में थे। इस परंपरा की दो शाखाएँ हुईं एक मानिकपुर-कालपी की और दूसरी जायस की।

जायसी ने पहली परंपरा के पीरों का स्तवन किया है। उन्होंने पीर सैयद अशरफ जहाँगीर तथा उनके पुत्र-पौत्रों का उल्लेख किया है। पं० रामचंद्र शुक्ल[2] के

१. पदमावत, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० ३५.
२. जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ८,९.

अनुसार "सूफी लो। निज़ामुद्दीन औलिया की मानिकपुर–कालपी वाली शिष्य-परंपरा इस प्रकार बतलाते हैं—

शेख निज़ामुद्दीन औलिया (मृत्यु सन् १३२५ ई०)
|
शेख सिराजुद्दीन
|
शेख अलाउल हक

शाखा १:
शेख कुतुब आलम (पडोई के सन् १४१५)
|
शेख हुसामुद्दीन (मानिकपुर)
|
सैयद राजे हामिदशाह
|
शेख दानियाल
|
सैयद मुहम्मद
|
शेख अलहदाद
|
शेख बुरहान (कालपी)
|
शेख मोहदी (मुहीउद्दीन)
|
मलिक मुहम्मद जायसी

शाखा २ (जायस):
×
|
×
|
×
|
सयद अशरफ जहाँगीर
|
शेखहाजी
|
शेख मुहम्मद या मुबारक — शेखकमाल
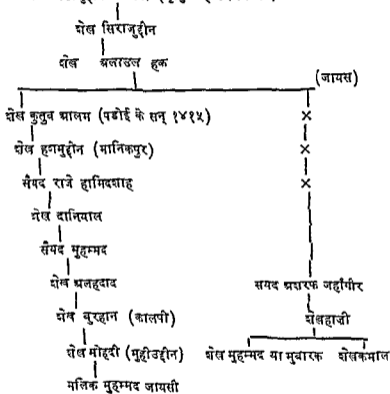
पदमावत और अखरावट दोनों में जायसी ने मानिकपुर-कालपीकी गुरु-परंपरा का उल्लेख विस्तार से किया है। इसमे डा० ग्रियर्सन ने शेख मोहिदी को ही उनका दीक्षा-गुरु माना है। गुरुवदना से इस बात का ठीक-ठीक निश्चय नहीं होता कि वे मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे, अथवा जायस के सैयद अशरफ के। पदमावत में दोनो पीरो का उल्लेख इस प्रकार है—

"सैयद असरफ़ पीर पियारा। जेइ मोहि पथ दीन्ह उजियारा।।
गुरु मोहिदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेइ कर खेवा।।"

आखिरी कलाम में केवल सैयद अशरफ़ जहांगीर का ही उल्लेख है। 'पीर' शब्द का प्रयोग भी जायसी ने सैयद अशरफ़ के नाम के पहले किया है और अपने को उनके घर का बंदा कहा है। पं० रामचन्द्र शुक्ल का अनुमान है कि "उनके दीक्षा गुरु तो थे सैयद अशरफ, पर पीछे से उन्होंने मुहीउद्दीन की भी सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की। जायस वाले तो सैयद अशरफ़ के पोते मुबारकशाह बोदले को उनका गुरु बताते है, पर यह ठीक नहीं जँचता[1]।"

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने जायस वाली गुरु-परंपरा में केवल चार नाम दिये हैं। जायसवाली परंपरा का चार्ट इस प्रकार है—

×
|
×सैयद अशरफ़ जहांगीर
|
शाह अब्दुर्रज्जाक
|
शाह सैयद अहमद
|
शाह अब्दुर्रज्जाक
|
शाह सैयद हाजी
|
शाह जलाल
|
शाह सैयद कमाल — शाह मुबारक बोदले

१. जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा काशी, पृ० ६–१० से उद्धृत
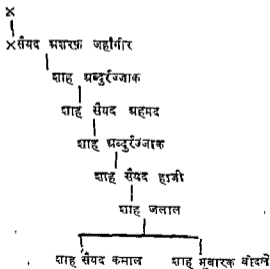
(जायसी को कुछ लोग इन्हीं शाह मुबारक का शिष्य बतलाते हैं।)

पदमावत के अनुसार सैयद अशरफ वाली परंपरा और सैयदराजे वाली गुरुपरंपरा इस प्रकार है—

पीर परंपरा (प्रथम)

सैयद अशरफ
|
सैयद हाजी
|
शेख मुहम्मद — शेख कमाल

द्वितीय (गुरु परंपरा)

सैयद राजे
|
हजरत ख्वाजा खिजिर
|
शेख दानियाल
|
सैयद मुहम्मद
|
शेख अलहदाद
|
शेख बुरहान
|
(शेख मेंहदी)
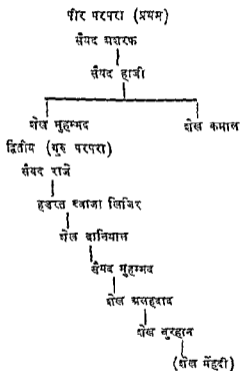
अखरावट की गुरु परंपरा भी लगभग इसी प्रकार की है। अन्तर यह है कि प्रथम परंपरा में निजामुद्दीन चिश्ती और अशरफ़ जहाँगीर को ही स्मरण किया है। दूसरी परंपरा हजरत ख्वाजा खिजिर तक ही है। जायसी के 'वै मखदूम जगत के हौं ओहि घर कै बाँद' से कुछ लोगों का विचार है कि "जायसी का गुरु-

द्वारा जायस था और उनके दीक्षा गुरु मखदूम साहब की गद्दी के उत्तराधिकारी शेख मुबारक थे।"[1]

इस संबंध में अनेक अन्य विद्वानों ने भी बड़ी दूर की कौड़ी लाने के प्रयत्न किए हैं। हम उनके पचड़े में न पड़कर इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस देश में आनेवाले सूफी संप्रदायों में चार प्रमुख थे–१. सुहरावर्दी २. चिश्ती ३. कादिरी और ४. नक्शबन्दी। चिश्तिया सम्प्रदाय के मूल संस्थापक ख्वाजा अब्दुल्ला चिश्ती बारहवीं शती के अन्त में भारत आए और अजमेर में रहने लगे थे। इन्हीं की शिष्य परंपरा में निजामुद्दीन औलिया हुए। निजामुद्दीन की शिष्य परंपरा में शेख अलाउल हुए। उन्हीं से अलाई चिश्तियों की एक शाखा मानिकपुर में स्थापित हुई। इसके आरम्भ-कर्ता शेख हिसामुद्दीन थे। जिनकी मृत्यु ८५३ हिजरी में हुई। उनके शिष्य सैयदराजे हामिदशाह अपने पीर की आज्ञा से जौनपुर में आ बसे थे, किन्तु वे फिर मानिकपुर लौट गए। वहीं ९०१ हिजरी में उनका देहान्त हुआ। इनके शिष्य शेख दानियाल हुए। दानियाल जौनपुर के राजा हुसेनशाह शर्की के जमाने में जौनपुर में आ बसे थे। "उनके अनेक शिष्यों में एक सैयद मुहम्मद हुए जिन्होंने महदी होने का दावा किया और वे अपने शिष्यों में महदी नाम से प्रसिद्ध हो गए। बदायूनी ने भी जौनपुर के सैयद मुहम्मद महदी का सम्मान पूर्वक उल्लेख किया है। इनकी मृत्यु १५०४ ई० में हुई। इनके शिष्य शेख अलहदाद हुए और अलहदाद के बुरहानउद्दीन अंसारी हुए जिन्हें जायसी ने 'शेख बुरहान' कहा है। शुक्ल जी ने बुरहान के शिष्य-रूप में शेख मोहिदी या मुहीउद्दीन का उल्लेख किया है। श्री हसन अस्करी ने सिद्ध किया है कि मोहिदी या मुहीउद्दीन कोई अलग व्यक्ति न थे, बल्कि सैयद मोहम्मद की ही संज्ञा महदी थी।"

चित्ररेखा में जायसी ने अपनी गुरु परंपरा का इस प्रकार उल्लेख किया है —

१. म० मु० जायसी, डा० जयदेव, पृ० ४१.

२. पद्मावत, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३७ (प्राक्कथन)

"महदी गुरु सेख बुरहानू । कालपि नगर तेंहिक अस्थानू ।।
मक्कइ चौथ कहहिं जस लागा । जिन्ह वै छुए पाप तिन्ह भागा ।।
सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला । धोवा पाप पानि सिर मेला ।।
पेम पियाला पथ लखावा । आपु चाखि मोहिं बूंद चखावा ।।"

हमें चित्ररेखा के इस उद्धरण से जायसी के गुरु के सबध में प्रचलित विवाद का पूर्ण समाधान मिल जाता है।

यह सत्य है कि जायसी ने सैयद अशरफ जहाँगीर की पीर-परपरा का भी उल्लेख किया है। ये सैयद अशरफ एक चिश्ती सप्रदाय के सूफी महात्मा हो गए है। ये फैजाबाद जिले में रहते थे। ये आठवी शती हिजरी के अन्त और उनके घराने के आरम्भ में जायसी से काफी पहिले हुए थे। जायसी उनके और नवमी शती के प्रति बड़े श्रद्धालु थे।

चित्ररेखा की कथा—

जायसी ने चित्ररेखा का प्रारभ इस समस्त जगत के सर्जनकर्ता की वन्दना के साथ किया है। उस समस्त जगत के करतार-राजा ने 'चौदह भुवनों को साजा है। उसी ने चाँद, सूर्य, तारे, वन, समुद्र, पहाड, स्वर्ग और धरती के सर्जन किये हैं। उसी ने वर्ण-वर्ण की सृष्टि उत्पन्न की है। वह चौरासी लाख योनि, जल, थल सर्वत्र रहता है। इस ससार में उसने जो कुछ भी बनाया वह सब क्षणभगुर है केवल वह स्वय स्थिर है। समस्त सृष्टि सूरज, चाँद, तारे, धरती, गगन, विद्युत, मेघ मानो एक डोर में बाँधे हुए हैं और ये सब डोर में नाथे हुए काठ की भाँति नर्तन करते रहते हैं। पहले तो वह अचीन्हा-निराकार-निर्गुण था, किन्तु जब उसने जग का निर्माण किया, तो जगत-रूप में वह स्थूल हो गया।

इसके बाद जायसी ने सृष्टि के 'करतार' की प्रशसा में बहुत कुछ लिखा है। पुन उन्होंने बाह्यन काया-प्रक्षालन, भूमि पर सिर पटकना, जटा बढ़ाना, भभूत लगाना, गैरिक वसन धारण करना, दिगम्बर योगी होना, काँटे के ऊपर उलट जाना, आदि की निस्सारता का स्पष्टीकरण किया है। भला इन बाह्याडंबरों से कहीं तप-जप-नेम कर्म-धर्म' और सबके ऊपर प्रेम की प्राप्ति होती है? यो

तो मछरी और मेढक सदा पानी में ही रहते हैं, चमगादड़ भी तो अपने को टाँगे ही रहता है, कुम्भकार तो सदा ही भस्म में सना रहता है, बर और पीपर में भी तो कम जटाएँ नहीं हैं। अरे भोले, कहीं ऐसे वेश से कुछ मिलता है ? हाँ, जब तक शरीर में विरह की निष्पत्ति नहीं होती, हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं होता—तब तक तप, धर्म, कर्म और सत्य (मत) की अवाप्ति नहीं हो सकती।

उस करतार ने मुहम्मद का सर्जन किया। सृष्टि तिमिराच्छन्न थी। मुहम्मद की ही प्रीति के कारण उसने ज्योति को आलोकित किया। जो यह नाम लेता है—जपता है वही कविलास प्राप्त करता है और वही बड़ा तपस्वी है। यह एक सूक्ष्म बात है कि उनसे ही यह सम्पूर्ण संसार हुआ है। वे ही हजरत नबी रसूल सबके अगुआ हैं।

उनके साथ उसने चार मित्रों का भी निर्माण किया। इन चारों में प्रथम नाम है अबाबकर सिद्दीक का। दूसरे हैं उमर अदल। उमर अदल ने अपने पुत्र के अन्याय की बात सुनकर उसे मरवा डाला। तीसरे हैं उसमान। इन्होंने कुरान लिखकर सुनाया। और चौथे हैं रणगाजी अली सिंघ।

सैयद अशरफ अत्यन्त प्यारे पीर हैं, मैं उनके द्वार का मुरीद हूँ। जहाँगीर चिश्ती समुद्र में जलयान सजाने वाले हुए हैं। हाजी अहमद, शेख कमाल, जलाल, शेख मुबारक आदि की प्रशस्ति के पश्चात् जायसी ने अत्यन्त आदर के साथ अपने गुरु का स्तवन किया है। शेख बुरहान महदी गुरु हैं। उनका स्थान कालपी नगर था। जायसी कहते हैं कि मेरे गुरु ने ही मुझे प्रेम-प्याला पंथ को दिखाया है।

फिर तो कवि ने अपने विषय में लिखा है—

मुहमद मलिक पेम मधु भोरा। नाउँ बड़ेरा दरसन थोरा। आदि।

इस संक्षिप्त भूमिका के साथ महाकवि ने चित्ररेखा की कथा प्रारम्भ की है।

चन्द्रपुर नामक एक अत्यन्त सुन्दर नगर था। वहाँ के राजा का नाम चन्द्रभानु था। यह नगर गोमती नदी के तट पर सुशोभित था। मणि-खचित तो वहाँ

के सभी मंदिर थे—चाहे वे राजा के हों या रंक के। उन प्रासादों के कलश सोने के ढाले हुए थे। वहाँ की स्त्रियाँ तो मानो स्वर्ग की अप्सराएँ थीं।

राजा के राजमंदिर में सात सौ रानियाँ थीं। वे अत्यन्त सुन्दर साक्षात् अप्सरा-स्वरूपा थीं। उन्हीं में एक बड़ी रानी थी। उसका नाम था रूपरेखा। वह अत्यन्त लावण्यमयी थी। वह सभी रानियों में पट्ट-प्रधान भी थी। उसके गर्भ से एक सुन्दर बालिका का जन्म हुआ। आनन्द बधाए बजे। ज्योतिषी और गणक आए। उन्होंने उसका नाम चित्ररेखा रखा और कहा कि यह निष्कलंक चाँद के समान अवतरित हुई है। रूप, गुण और शील में यह जगत में अत्यतम होगी। आज इसका जन्म तो चन्द्रपुर में हुआ है, किन्तु यह कन्नौज की रानी होगी। धीरे-धीरे चाँद की कला के समान वह बढ़ती गई। दसवें वर्ष के आते-आते तो पूनम के चाँद जैसा उसका बदन प्रकाशित हुआ, भौंरे, सर्प और शेष-नाग जैसे उसके केश हो गए, उस गोरी की ज्योति तो शरद के पूनम की ज्योति थी, नयन खंजन के समान हो गए। भौंहें धनुष के समान, बरुनी बाणों के समान और पलकें तलवार के समान हो गईं।

सावन में वह सखियों के साथ हिंडोला झूलती थी। जब वह सयानी हुई, तो राजा चन्द्रभानु ने ब्राह्मणों को बुलाया और वर खोजने के लिए अगुआ भेजा। वे सैकड़ों स्थान देख आए, जहाँ राज्य था, वहाँ राजकुमार नहीं था। अन्त में वे सिंघद के राजा सिंघनदेव के यहाँ आए। सिंघनदेव के एक ही लड़का था—सो भी कुबड़ा। अगुआ लोगों ने बड़ा राजपाट देखा, तो बरोक (वरच्छा) कर दिया। उन लोगों ने निश्चय किया कि विवाह के समय हम दूसरा वर दिखा देंगे और विवाह होने के बाद जो होना होगा सो देखा जाएगा। पुरोहितों ने स्वस्ति-पाठ किया और कुँवर को टीका लगा दिया। लग्न-निर्धारित किया जाने लगा, परन्तु ज्योतिषियों ने कहा कि चन्द्रमा और राहु का योग है—यह ब्याह न हो सकेगा। ज्योतिषी लोग चले गए।

कन्नौज नगर के राजा थे कल्यान सिंह। उनके पास अपार पदाति, हस्ति आदि सेनाएँ थीं। वे सब प्रकार से सम्पन्न थे, किन्तु एक पुत्र-रत्न के बिना वे बड़े

दुखी थ । उन्होंने घोर तप किया और राजमंदिर में पुत्र का अवतार हुआ । पंडित और सामुद्रिक आए । उन्होंने कहा कि इस बालक का जन्म उत्तम घरी में हुआ है, उसका नाम प्रीतमकुँवर रखा और कहा कि इसमें बत्तीसों लक्षण हैं, यह अत्यंत भाग्यवान होगा, किन्तु यह अल्पायु है। वह भी कला-कला बढ़ता गया। दस वर्ष की अवस्था में सेना एकत्र करके उसने शत्रु पर चढ़ाई की । जब कल्यान सिंह ने देखा कि पुत्र सर्वत योग्य हो गया है, तो उन्होंने पुत्र को समस्त राज-पाट सौंप दिया । राजकुमार की योग्यता से माता-पिता अत्यन्त सुखी हुए । इसी हर्षातिरेक के कारण वे उसका ब्याह करना भी भूल गए । जन्म के समय पंडितों ने उसके अल्पायु होने की बात बताई थी, अब उसकी मृत्यु के अढ़ाई दिन मात्र शेष रह गए । वे करुणा-क्रन्दन करने लगे—हाय, हमने पुत्र का ब्याह तक नहीं किया । अब सूरज सदा के लिए अस्त होने जा रहा है, भला अब हमारे संसार में कौन और की प्रत्यूषी किरणें लाएगा !

प्रीतम कुँवर ने माता-पिता को बहुत समझाया । वे एक घोड़े पर आरूढ़ होकर काशी की ओर काशी-गति के लिए चल पड़े । उनके जाने के बाद कन्नौज उजाड़ हो गया । माता-पिता के हृदय विदीर्ण हो गए ।

चन्द्रपुर नगर में राजकुमारी चित्ररेखा के ब्याह का उछाह हो रहा था। उस नगर के पास आते-आते घाम के आधिक्य के कारण प्रीतम कुँवर ने छाया में जाकर विश्राम किया । काल के भय से न जाने कब उसे मूर्छा आ गई । सिंघन देव अपने कुवंरे बेटे का ब्याह करने उसी राह से आ रहा था । उसने भी उसी छाँह में विश्राम करना चाहा—जहाँ प्रीतमसिंह लेटा था । सिंघनदेव ने देखा तो समझ लिया कि यह किसी बडे राजा का पुत्र है । उसके रूप को देखकर वे अत्यन्त आनन्दित हुए । वे कुँवर के पास बैठकर हवा करने लगे । सोते-सोते जब प्रीतम कुँवर की आँखें खुली, तो वह चौंक कर उठा, क्योंकि पर्याप्त देर हो चुकी थी । जब चलने लगा तो सिंघनदेव ने उसके पैर पकड लिए । उन्होंने राजकुमार से कुल नाम और उसकी उदासी का कारण पूछा । उसकी महान् विपत्ति की बात को सुनकर सिंघनदेव ने कहा कि हम इस नगर में ब्याह करने के लिए आए

हैं। मेरा बेटा कुबरा है, इसलिए तुम आज रात में उसका स्थान ले लो और वर बन जाओ। हाँ, तुमसे यह ब्याह नहीं हो रहा है वर तो मेरा कुबरा बेटा है। आज रात में ब्याह कर लो और कल काशी चले जाना।

सिघनदेव ने उसे बीरा दिया। उसे वर के रूप में सजाया गया। उसने अपने सब कपड़े अत्यन्त दुःख से भरकर उतार दिए। उसने सोचा कि कहाँ हम काशी-गति के लिए चले थे और कहाँ बीच में ही विवाह होने लगा। राजा चन्द्रभानु के अगुआ लोगों ने दूल्हे को देखा। वे बड़े सुखी हुए। इस समय प्रीतमकुँवर की स्थिति भी विचित्र थी। वह परनारी का नायक था और पराए बनज का सेठ बना था।

बारात बाजे-गाजे के साथ चन्द्रभानु के द्वार पर पहुँची। सखियों ने बरात और दूल्हे को देखकर चित्ररेखा से बड़ी-बड़ी बातें की।

बड़े ठाट-बाट से विवाह हुआ। सात खंड के धौरहरे में उन दोनों को सुलाया गया।

प्रीतमकुँवर को कहाँ चैन और कहाँ भोग! उसने सोचा आज यह सुख की सेज और कल स्वर्गारोहण। वह दुलहन की ओर पीठ करके सोता रहा—सोया क्या चिंता करता रहा। दुलहन सो गई। पिछला पहर होने लगा। उस राजकुमारी के अंचल-पट पर प्रीतम कुँवर ने लिखा—"मैं कन्नौज के राजा का बेटा हूँ। जो विधाता ने लिख दिया है वह मिटाया नहीं जा सकता। मेरी मात्र बीस वर्ष की आयु थी। वह पूर्ण हो गई, वह पुनः नहीं लाई जा सकती। कल दोपहर के पूर्व मैं काशी में मोक्ष-गति प्राप्त करूँगा। तुम्हारे लिए यह झंखना हुआ और मुझे यह दोष लगा।"

यह लिखकर प्रीतमकुँवर घोड़े को दौड़ाता हुआ काशी की ओर चल पड़ा।

प्रातःकाल जब तारे डूबने लगे, तो सखियाँ चित्ररेखा के पास आईं। उन्होंने देखा कि धन्या सोई हुई है। वैसे ही अछूते सबके सब साज-'सिंगार'। उन्होंने उसे जगाते हुए कहा कि उठो प्रातःकाल हो गया। वह तुम्हारा कांत किधर है? तुम्हारी सेज पर फूल वैसे ही हैं जैसे हमने बिछाए थे। लगता है कि तुम्हारे अंग

भी अछूते-अनालिंगित हैं। तुम पंडित हो, सयानी हो और चतुरा भी हो, भला किस अवगुण के कारण तुमने प्रियतम की सेज को स्वीकार नहीं किया !

सखियों के बहुत पूछने पर चित्ररेखा ने कहा—'मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। मुझे तो उनके दर्शन भी न हुए। केवल 'पीठ' मिली। मैंने तो उनके रूप को भी नहीं देखा।"

जब वह 'पीठ' की बात कह रही थी, तो अचानक उसकी दृष्टि अंचल के लेख पर पड़ी। उसने पढ़ना शुरू किया। पढ़ने के बाद उन्हें सारी बातें ज्ञात हो गईं। राजकुमार काशी गए, मैं अप्सरा होकर उनकी दासी बनूंगी। मैं अत्यन्त शीघ्र अग्नि में जलकर अपने पति के ही साथ स्वर्ग चलूँगी।

इतना कहने के बाद उसने सिंधोरा निकाला। सिंदूर लगाकर आ खड़ी हुई। अंचल में बाँधी गाँठ को हृदय से लगा कर उसने कहा कि प्रियतम ने यह फेंटा देकर मेरा सम्मान किया है। अब इसी फेंट को गृहीत करके मैं स्वर्ग में जाऊँगी। हे प्रिय, यद्यपि तुमने मुझे इस प्रकार बिसार दिया, किन्तु मैं नारी हूँ। मैं स्वयं को जला कर तुमसे मिलूंगी। यहाँ साथ न ले चले, तो कोई बात नहीं, वहाँ तो मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।

प्रीतमकुँवर ने काशी में आकर मरने की तैयारी की। उसने दान करना शुरू किया। बड़े-बड़े जप-तपा आ पहुँचे। उसके दान की ख्याति सुनकर सिद्धगणों का मन बढ़ा। महर्षि व्यास जी वहाँ आकर खड़े हो गये। राजकुमार ने सबको दान दिया। उसने व्यास जी से कहा—'गुसाईं ! आप भी लीजिए।' उसने 'भर मूठी' दान दिया। व्यास जी का हृदय पसीज गया उन्हें उसके प्रति छोह हुआ। फिर क्या पूछना ! व्यासजी के मुख से निकल ही तो पड़ा—'चिरंजीव' 'औ चिरंजीव तुम होहु।'

राजकुमार को इस 'चिरंजीव' शब्द पर आश्चर्य हुआ। 'मैं तो जल मरने को प्रस्तुत हूँ, हे गुसाईं, यह चिरंजीव कैसा ! तुम मेरे बड़े पिता हो। मरते समय तुमने मुझे जीने का आशीर्वाद दिया है।'

पुन व्यासजी ने इस बात को मन में समझ लिया और उन्होंने कहा कि जो मुख से निकल गया वह अन्यथा नहीं हो सकता। मैं व्यास हूँ और आज तुमसे मेरा मिलन हुआ। विधाता ने मेरे मुख से यह बात कहवायी है। चिरजीव कहकर तुम्हारी आयु की अवधि बढा दी गई।

राजकुमार ने व्यास जी के चरणो में नमित होकर प्रणाम किया। व्यास का नाम सुनकर राजकुमार का प्रत्येक अग प्रफुल्लित हो उठा। अपने जीवन की लबी आयु की बात सुनकर उसे चेत हुआ। उसके चित्त में चित्ररेखा की सुधि हो आई—यदि वह धर्म, कुल और लाजवश जल गई, तो मेरा जीवन किस काम आएगा।'

उसने व्यास जी के चरणो का स्पर्श किया और वह घोडे पर चढकर चल पडा।

इधर चित्ररेखा जलने के लिए उद्यत थी। चिता सजाई जा चुकी थी। वह बैठ चुकी थी। केवल आग लगने भर की देर थी। ठीक इसी समय प्रीतम कुँवर का आगमन हुआ। उन दोनो की आँखें मिली। उस रूपसी ने अपना सिर लज्जा-वश ढंक लिया। वह चिता से उतरकर मदिर की ओर चली। राजकुमार के चिरजीवी होने की बात चारों ओर फैल गई। बाजे बजने लगे। दैव ने आज शोक के मध्य सुख और भोग की निष्पत्ति की। जिनके हृदय में वियोग होता है वे वियोगी अवश्यमेव मिलते है।

सखियो ने चित्ररेखा को पुन जडाऊ हार आदि से खूब सजाया। सखियो ने कहा—'आज तुम्हारे कांत तुम्हें भेंटना चाहते हैं। समस्त सताप आज मिट जाएँगे। प्रियतम की सेवा में जिसका मन लगा है, उसका सोहाग दिन दिन बढता ही रहता है। सेवा करने में दोष नही लगता। सेवा करने से काल कभी क्रोध नहीं करता। जो सेवा करते रहते हैं वे दसवी दशा तक पहुँच जाते है और जो खेलते रहते हैं वे पीछे पछताते हैं।

इस कथा का उपसहार जायसी ने अवध भोजपुर जनपद में लोक-ख्याति-लब्ध उक्ति से किया है—

"कोटिक पोथी पढि मरे, पंडित भा नहिं कोइ ।
एकै अच्छर पेम का, पढ़े सो पंडित होइ ।।'[1]

चित्ररेखा की कथा मूल-स्रोत

प्रेमाख्यानक परंपरा के कवियों ने अपने काव्यों में कथाओं का वही रूप ग्रहण किया है जो लोक जीवन की, लोक कथाओं की तथा लोक गीतों की मौखिक तथा निजधरी कथाओं की साहित्यिक परंपरा में ढल चुका था। कबीरदास के भजन, सूरदास के लीलागान और तुलसीदास का रामचरितमानस अपनी अंतर्निहित शक्ति (तथा पौराणिकता) के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गए और हिन्दू-जनता का ध्यान अपनी ओर खींचने में समर्थ हुए। जन-साधारण का एक और विभाग जिसमें धर्म का विशेष स्थान नहीं था, जो अपभ्रंश के परिचमी आकर से सीधे चला आ रहा था जो गाँवों की बैठकों में कहानी और ज्ञान रूप से चला आ रहा था, उपेक्षित होने लगा था। सूफी साधकों ने पौराणिक आख्यानों के स्थान पर इन लोक-प्रचलित कहानियों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई। सूफी प्रेम-कथाओं का स्रोत लौकिक है। प्राय सभी सूफी प्रेमकथाएँ लोक-जीवन की परंपरा से गृहीत हैं। यही कारण है कि सभी सूफी प्रेमकाव्यों में अद्भुत साम्य है। मृगावती, मधुमालती, पद्मावत, चित्रावली, हंसजवाहिर, आदि की कथाओं का मूल स्रोत एक ही है—लोक जीवन! उनका गठन भी एक-सा ही है—लौकिक! "हमारा अनुमान है कि सूफी कवियों ने जो कहानियाँ ली हैं, वे सब हिन्दुओं के घर में बहुत दिनों से चली आती हुई कहानियाँ हैं, जिनमें आवश्यकता-

---

१. प्रस्तुत दोहा कबीर, जायसी आदि कई कवियों और संतों की कृतियोंमें थोड़ेसे अंतरके साथ मिलता है। इसका यह अर्थ नहीं कि जायसी ने कबीर से चुराया है या कबीरने जायसी से या अन्य किसी से जायसी या कबीरने। वस्तुतः अनेक दोहे और पद एक-दो शब्दों के अंतर से जायसी, कबीर, ढोलामारू-रा-दूहा आदि में मिल जाते हैं। मूलत ये दोहे या पद लोककण्ठके हैं लोक के हैं इनका मूल उत्स लोक है। उसी लोक से इन कवियों ने इन दोहों को गृहीत किया है।

नुसार उन्होंने बहुत कुछ हेर-फेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिंदू है।" प्रेमाख्यानक परंपरा के कवियों में हिन्दू धर्म और जीवन के प्रति उच्चकोटि की धार्मिक सहिष्णुता और सहानुभूति है। इसी के माध्यम से उन्होंने प्रेम-पीर को सहज, सरल एवं मार्मिक अभिव्यक्ति की है।"[1]

मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'चित्ररेखा' की कथा भी अवध-भोजपुर जनपद में प्रचलित एक लोक-कथा है। यह कथा थोड़े-बहुत अन्तर के साथ आज भी अवध-भोजपुर जनपद के ग्रामीण 'किस्सा-गो' लोगों से सुनी जा सकती है। इन पंक्तियों के लेखक ने काशी के सुख्यात 'किस्सा-गो' स्व० पं० बलभद्रजी पाठक से एक कहानी सुनी है। उन्होंने चित्ररेखा के स्थान पर 'चन्द्रलेखा' नाम कहा था। उनकी कहानी के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

"रानी रूपमनी के कोख से एक लड़की जनमल। ओकरे रूप के विधै में का कही। जोतिसी लोग अइलन। ओह राजकुमारी क नाँव चन्द्रलेखा रखलन। त ऊ सच्चों में चन्द्रलेखै रहल। राजा के अन्हियार घरे में उँजियार हो गयल। एक, दुइ, तीनि, चार—और फिर पूरनमासी के चद्रमा जैसन उहो राज-कुमारी कला-कला निखरै लगल।

एक दुसरे देस में एक राजा रहलन। बड़ा भारी, चक्रवर्ती राजा। ओनकर चउथा पन आय गयल, पर घरे में लड़िका नाहीं। ओनके चिन्ता भइल कि अब केऽ राजपाट सम्हाली, केऽ हमार पितृ-तर्पन करी?—

बड़े दान-पुन्न के बाद ओनके रानी के एक लड़िका भयल। जोतिसी लोग बतउलन कि ई लड़िका बड़ा भागमान हो, सारे संसार में एकर जस छा जाई, लेकिन विधाता के का कही? ऊ ऽ जवन लिखे हयन तवन कैसे मिटी! एह राजकुमार क आयु खाली बीस बरिस क हो! ....

अन्त में बड़ा-बड़ा जग, दान कै के राजकुमार कासी जी में आयल। उहाँ गंगाजी के किनारे चिता सजाइ गइल। ओह जगह ऊ लगल दान देवै। संजोग

1. देखिए, पदमावत का काव्य-सौंदर्य, शिवसहाय पाठक, पृ० १-५६.

से बियास जी भाइ गइलन, ग्रोनहूँ के ऊऽ दान देहलेस। बियास जी कहि देहलन 'चिरंजीव!' फिर तऽ बियास जी के बात के कारन हनुमान जी भइलन अउर जम के दूतन के भगाय देहलन। जमराज दूतन क बात सुनिके बिस्नू भगवान् के दरबार में गइलन! बिस्नू भगवान ग्रोन्हें समझउलन कि बियास जी जवन कह देहलन तवन कवों मिट नाही सकत।"...ग्रादि। ग्राज भी यह कहानी ग्रवध प्रदेश में थोड़े ग्रतर के साथ प्रचलित है।

जायसी ने ग्रवध-भोजपुर जनपद में प्रचलित इस कहानी को गृहीत किया है। उन्होंने ग्रपनी विचक्षण प्रतिभा द्वारा प्रेम-पीर की व्यंजना से इस कहानी को एक ग्रभिनव सुन्दर साँचे में ढाल दिया है।

चित्ररेखा के कुछ विशिष्ट ग्राकर्षण—

१. मसनवी-पद्धति के ग्रनुसार जायसी ने चित्ररेखा के प्रारंभ में समस्त जगत के 'करतार' राजा की वन्दना की है।

"ग्रादि एक बरनौं सो राजा। जाकर सबै जगत यह साजा॥

सब पर मानुस सरा गोसाईं। सबै सरा मानुस कै ताईं॥"

उसी ने समस्त सृष्टि की सर्जना की है। चाँद, सूर्य, मेघ, विद्युत सभी उसी के इंगित से परिचालित हैं—

"नाचै डोर काठ जस नाचा। खेल खेलाइ फेरि गहि खाँचा॥"

ईश्वर-स्तुति के पश्चात् जायसी ने मुहम्मद-स्तवन किया है।

"प्रम पिरीति पुरुष एक किया। नाँव मुहम्मद दुहूँ जग दिया॥"

हजरत नबी रसूल की स्तुति के पश्चात् चार मित्रों की प्रशंसा की गई है-

"ग्रबाबकर सिद्दीक बखाने। सुनत बात सब निहचइ माने॥

उमर ग्रादल सों कीन्ह ग्रमेटा। सुनि ग्रनियाउ मरावा बेटा॥

उसमाँ लिखि पुपुरान सुनावा। जिन्ह जिन्ह सुना पंथ तिन्ह पावा॥

ग्रली सिंघ खाँडे रन गाजी। जुल्फिकार दुलदुल जिन साजी॥",

२. पीर-परंपरा का उल्लेख—

जायसी ने सैयद अशरफ का अत्यन्त आदर से उल्लेख किया है—

"सैयद असरफ़ पीर पियारा। हौं मुरीद सेवौं तिन वारा॥
जहाँगीर चिस्ती ओइ राजे। समुंद माँहि बोहित जिन साजे॥
हाजी अहमद हाजी पीरू। दीन्ह बाँह जिन समुद गंभीरू॥
सेख कमाल जलाल दुल्यारा। दुओ सो गुनन बहुत बहुबारा।
अस मखदूम बोहित लइन, धरम करम कर चाल।
करिआ सेख मुबारक, खेवट सेख जमाल॥"

जायसी जायस में रहते थे। वहाँ पर पर सैयद अशरफ़ प्रसिद्ध पीर हो चुके थे। सैयद अशरफ़ साहब की दरगाह वहाँ अब तक विद्यमान है। पं० रामचंद्र शुक्ल ने 'सैयद अशरफ़' को जायसी का दीक्षा गुरु माना है, पर वस्तुत. ऐसी बात नहीं है। सैयद अशरफ तो जायसी के अत्यंत प्रिय पीर थे। जायसी अपने को उनके द्वार का मुरीद मानते हैं। सैयद अशरफ़ की मृत्यु जायसी के जन्म से बहुत पहले ८०८ हि० में हो चुकी थी। अत. वे जायसी के दीक्षा-गुरु नहीं हो सकते। उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि पीर सैयद अशरफ़ की परम्परा के प्रति जायसी अत्यंत कृतज्ञ हैं—

"जहाँगीर वै चिस्ती, निहकलंक जस चाँद।
वै मखदूम जगत के, हौं ओहि घर के बाँद।" (पद्मावत,स्तुति खंड, पृ० ७)

३. गुरु परम्परा का उल्लेख—

जायसीने 'चित्ररेखा'में अपनी गुरुपरंपरा भी दी है—

"महदी गुरू सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिक अस्थानू॥
मनकइ चौथ कहहि जस सागा। जिन्ह वै छुए पाप तिन्ह भागा॥
सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला। धोवा पाप पानि सिर मेला॥
पेम पियाला पंथ लखावा। आप चाखि मोहि बूँद चखावा।"

'मक्कई' चौद' से अभिप्राय है कि वे चार बार मक्का गए थे। इसी कारण वे अत्यंत यशस्वी हुए, उन्होंने जिसे छू दिया वह पुण्यात्मा हो गया। उन्होंने ही जायसी को 'प्रेम-प्याला-पथ' दिखाया था। (देखिए—गुरु-परंपरा)

४. कवि का अपने विषय में कथन—

"मुहमद मलिक पेम मधु भोरा। नाउँ बड़ेग दरसन थोरा ।।
जेवँ जेवँ बूढ़ा तेवँ तेवँ नवा। खुदी कई खयाल न कवा ।।
हाथ पियाला साथ सुराही। पेम पीति लइ ओर निवाहीं ।।
बुधि खोई औ लाज गँवाई। अजहूँ अइस धरी लरिकाई ।।
पता न राखा दुहवइ औता। मता कलालिन के रस मौता ।।
दूध पियावइ तैसउ धारा। बालक होइ परा तिन बारा ।।
रोवउँ लोटउँ चाहउँ खेला। भएउ अजान छार सिर मेला ।।

पेम कटोरी नाइ कै मता पियावइ दूध।
बालक पीया चाहइ, क्या मगर क्या बूध ।।

मलिक मुहम्मद पथी, घरही माँहि उदास।
कबहूँ सँवरहि मन कै कबहूँ टपक उबास ।।

मुहमद साधर दीन दुनि, मुख अंब्रित बैनान।
बदन जइस जग चंद सपूरन, सूक जइस नैनान ।।

आध्यात्मिक प्रेममूलक रहस्यवाद—

समासोक्ति शैली—जायसी के काव्य में चारचाँद लगाने वाली वस्तु है उनकी समासोक्ति मूलक शैली। कविने 'पदमावत' की ही भाँति 'चित्ररेखा' में भी वस्तु-वर्णन के प्रसंग में ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है जिससे प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत—परोक्ष सत्ता का अर्थ भी पाठक के चित्त में अनायास उद्भासित हो

१. मक्कई चौद कहहिंजस लागा।" का अर्थ मुझे विद्वद्वर डा० मोती चंद्र जी ने अत्यंत कृपापूर्वक बताया है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

सके। जैसे 'पद्मावत' में सिंहलगढ के वर्णन के प्रसग में नौ पौरी और दसवें दरवाजे वाले नगर के सकेत नौ छिद्रो और दसवें ब्रह्मरध्रवाले शरीरका सकेत उपस्थित करते हैं। इस प्रकार की कथनशैली को समासोक्ति-पद्धति कहा जाने लगा है।

वस्तुत समासोक्ति एक अलकार है जिसका सौन्दर्य विशेषणो के प्रयोग पर निर्भर करता है। इसे काव्य-शास्त्रविदों ने विशेषण-विच्छित्ति मूलक अलकार की सज्ञा दी है। श्लेष की सुन्दरता विशेषण और विशेष्य दोनों के सम्मिलित सौन्दर्य पर आश्रित है। इसीलिए उसे विशेषण-विशेष्य विच्छित्तिमूलक अलकार भी कहते हैं। श्लेष में नियमत दो अर्थों को स्पष्ट करना पडता है, किन्तु समासोक्ति में कवि कुशलतापूर्वक ऐसे —विशेषणोका प्रयोग करता है जो सहृदयके हृदय में अप्रस्तुत अर्थ का सकेतमात्र कर देते हैं।

अन्योक्तिमूलक शैली के अतिरिक्त कथात्मक रहस्यवाद की अभिव्यक्ति का एक दूसरा ढग भी है। कवि कथा के बीच-बीच में आध्यात्मिक सकेत करता चलता है। कोई आवश्यक नहीं है कि ये सकेत किसी निश्चित क्रम के अनुसार हो।

कथा के प्रसग में जायसी को जब और जहाँ अवसर मिला है वे रहस्यपूर्ण सांकेतिक अर्थ की व्यजना में चूके नहीं है।

'चित्ररेखा' के प्रारभ में जायसी ने ईश्वरकी स्तुतिकी है। ईश्वर के स्तवन के साथ ही 'गवन' की बात वे नहीं भूलते —

"सको तो गवन करिलेहु फिर चल्हिं छूछे हाथ।"

जायसी ने कई स्थलो पर समासोक्ति की योजना सूफी-विचार धारा की अभिव्यक्ति के हेतु भी की है। वे प्रेम को ही मूलतत्व और सब कुछ मानते हैं। वे उस दिव्य प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए दाम्पत्य-प्रेम का माध्यम लेते हैं। प्रियतम और प्रियतमा के प्रतीको के आधार पर वे इस लोकको नैहर और उस लोक को प्रियतम का लोक मानते हैं। जैसे—

"झूलि लेहु नैहर जब ताईं। फिरि कत झूलन देहैं साईं ॥
ले कै ससुर राखिहैं तहाँ। नैहर गवन न पाइब जहाँ ॥
कहँ यह धूप कहाँ यह छाहाँ। रहब रैन दिन मंदिर माँहाँ ॥
कत नैहर फिर आइब, कत ससुरे यह खेल ।
आपु-आपु कहँ होइहै, ज्यों पंखिन महँ डेल ॥

चित्ररेखा की छोटी सी कथा में जायसी ने और भी अनेक स्थलों पर परोक्ष सत्ता की ओर इंगित किया है—रानी चित्ररेखा पति के काशीगमन और पुनः वहाँ जाकर काशीवास वाले अंचल-लेख को पढ़कर जलमरने को प्रस्तुत होती है—

"अब एहि फेंट तस जीवन लाऊँ। गहे फेंट कबिलास सिधाऊँ ॥
निठुर नाह अस बूझँ नाही। चलत बार फेंट गहि बाहीं ॥
जो तुम पिउ हौं अइस बिसारी। आपुहिं जारि मिलौं तो नारी ॥
कत न पूछइ जो इहाँ, छार होउँ जरि भग ।
मोकहँ सो पूछइ होइ, उहाँ कौन कहु संग ॥"

६ प्रेम की सर्वोच्चता—

जायसी एक महान् सूफी संत थे। प्रेम-पंथ उनकी साधना का पथ था। वे व्यर्थ की तपस्या तथा वाह्याडम्बर को महत्वहीन समझते थे। 'मनमें बिरह' का होना वे प्रेम-प्रभु की प्राप्ति के लिए आवश्यक मानते थे। बिना बिरह के प्रेम नहीं उत्पन्न होता—

"का भा परगट कया पखारे। का भा भगति भूइं सिर मारे।
का भा जटा भभूत चढाएँ। का भा गेरू कापरि लाएँ ॥
का भा भेस दिगंबर छाँटे। का भा आपु उलटि गए काँटे।
जो भेसहि तजि मौन तू गहा। ना बग रहे भगत बेचहा ।
पानिहि रहै मच्छि औ दादुर। टाँगे नितहिं रहै फुनि गादुर ॥
पसु पंछी टाँगे सब खरे। भसम कुम्हार रहै नितभरे ॥
बर पीपर सिर जटा न थोरे। अइस भेस की पावसि भोरे ॥

जब लगि बिरह न होइ तन, हियँ न उपजइ पेम ।
तबलगि हाथ न आव तप-करम-धरम-सत नेम ।।"

जायसी बाह्याडंबर और निष्प्रेम साधना की निस्सारता के विषय में लिखते हैं—प्रकट रूप से काया-प्रक्षालन से कोई फायदा नहीं। धरती पर सिर पटकने वाली साधना व्यर्थ है, जटा और और भभूत धारण करने का कोई मूल्य नहीं है। गैरिक वसन धारण करने का कोई अर्थ नहीं है। दिगंबर जोगियों का-सा रहन भी बेकार है। काँटे पर उत्तान सोना और साधक होने का स्वांग भरना बेकार है। मौन ग्रहण करना भी व्यर्थ है कहीं बकुला भी मौनी बनकर भगत होते हैं ? पानी में ही तो मछली और मेढक भी रहते हैं। गादुर पक्षी भी तो अपने को टाँगे रहता है ! कुम्हार भी तो भस्म से सना रहता है। क्या वट और पीपल में कम जटाएँ हैं ? अरे भोले, ऐसे वेश से कहीं कुछ मिलता है ! जबतक विरह नहीं होता हृदय में प्रेमकी निष्पत्ति नहीं हो सकती। बिना प्रेम के तप कर्म-धर्म और सतनेम की प्राप्ति सच्चे अर्थों में नहीं होती। स्पष्ट है कि जायसी सहज प्रेम-साधना को ही सर्वश्रेष्ठ साधना मानते हैं।

लगता है कि 'चित्ररेखा' की रचना के समय जायसी काफ़ी वृद्ध हो चले थे—

मुहमद मलिक पेम मधु भोरा । नाउँ बड़ेरा दरसन थोरा ।।
जेवँ जेवँ बूढ़ा तेवँ तेवँ नवा । खूदी कइ खयाल न कवा ।।"
हाथ पियाला साथ सुराही । पेम पीति लइ ओर निबाही ।।
बुधि खोई और लाज गँवाई । अजहूँ अइस धरी लरिकाई "

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि जायसी का नाम बहुत बड़ा था। उनके नाम की पर्याप्त प्रख्याति हो चली थी भले ही वे 'दरसन थोरा' रहे हों। ज्यों-ज्यों वृद्धावस्था आ रही थी त्यों-त्यों उनमें अभिनवता का सन्निवेश हो रहा था।" अजहूँ अइस धरी लरिकाई से स्पष्ट है कि इनकी अवस्था अधिक हो चली थी।

जायसी ने 'चित्ररेखा' में एक स्थल पर और इसी प्रकार का इंगित किया है—
"यह संसार झूठ थिर नाहीं । तरुवर पंखि तार परछाहीं ।।

मोर मोर कइ रहा न कोई । जोरे उवा जग अथवा गोई ।
जो जग होत नीक अवतारा । होतई जनम न रोवत धारा ॥"

इन पंक्तियों में वैराग्य-विषयक बात कही गई है, किन्तु अपनी वृद्धावस्था की ओर भी कवि ने इंगित कर दिया है— "जोरे उवा जग अथवा गोई।" पदमावत और चित्ररेखा के साक्ष्य पर हम कह सकते हैं कि जायसी मृत्यु के समय काफी वृद्ध हो गए थे।

चित्ररेखा की कथा दोहा-चौपाई वाली शैली में लिखी गई है। लगता है कि जायसी ने सात अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का विधान किया था, किन्तु जिन दो प्रतियों के आधार पर चित्ररेखा का यह संपादन हुआ है उनमें सात अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का विधान कुछ स्थलों पर नहीं मिलता। मुझे प्रो० गजकिशोर पांडेय से ज्ञात हुआ है कि उस्मानिया विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति पूर्ण है और उसमें सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक दोहे का विधान बराबर मिलता है।

चूंकि ये दोनों प्रतियाँ फारसी लिपि में हैं और कहीं-कहीं प्रतिलिपिकार ने अधिक गच-पच किया है अत कुछ पंक्तियों में मात्राओं की अधिकता और कमी स्वयं मुझे भी खटकती है। यह मेरे भी अज्ञान का दोष हो सकता है। एक दो और प्रतियों के मिलनेपर यह गड़बड़ी दूर हो जाएगी—ऐसा मेरा विश्वास है। यों डा० माता प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि पद्मावत आदि में जायसी ने दोहे-चौपाई का स्वतंत्र प्रयोग किया है।

आकर्षण के विशिष्ट केन्द्र —

'कहानीपन' के दृष्टिकोण से चित्ररेखा एक अत्यंत सशक्त रचना है। ईश्वर स्तुति, पीर, गुरु, मित्र आदि के पश्चात् जब कथा प्रारंभ होती है तो उसकी धारा में कहीं भी शैथिल्य नहीं आता। सोलहवीं शताब्दी की अवधी भाषा का जीवत रूप, चित्ररेखा का सौन्दर्यवर्णन, कथा का प्रबल प्रवाह, भाषा की व्यंजकता, सजीवता, सहजता और प्रेषणीयता, प्रेमपंथ, जायसी की ईश्वर स्तुति, गुरु और पीर-

परम्परा लोक कथा, अवध का लोक जीवन, सूरज, चाँद और तारे के प्रतीक आदि चित्ररेखा के विशेष आकर्षण हैं ।

१०–जायसीकृत ग्रंथ और 'चित्ररेखा' का संपादन :

शोधकों, खोज-रिपोर्टों, एवं सूचनाओं के साक्ष्य पर हमें जायसी की निम्नलिखित कृतियों का पता चलता है—

१. पदमावत २. अखरावट ३. आखिरी कलाम ४ महरी बाईसी ५ चित्ररेखा ६. चंपावत ७ इतरावत ८. मटकावत ९. चित्रावत (लगता है कि चित्ररेखा और चित्रावत अभिन्न हैं ?) १०. खुर्वानामा ११. सखरावत १२. मोराइनामा १३. मुखरानामा १४. होलीनामा १५ पोस्तीनामा १६. नैनावत १६. मेखरावटनामा १८. मुकहरानामा १६. अन्य (स्फुट छंद आदि) २० मसला[1]

अद्यावधिक शोधों के परिणाम स्वरूप जायसी की चार कृतियों का प्रकाशन हो चुका है । पं० रामचंद्र[2] शुक्ल ने जायसी-ग्रंथावली के अंतर्गत 'अखरावट', और 'आखिरी-कलाम' का संपादन किया था । १९५१ ई० में डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित और हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद से 'जायसी-ग्रंथावली' का प्रकाशन हुआ । इसमें पदमावत, अखरावट और आखिरी कलाम के अतिरिक्त जायसी की एक अन्य कृति–महरीबाईसी का भी प्रकाशन किया गया है । सैयद कल्बे मुस्तफ़ा ने 'म० मु० जायसी' शीर्षक ग्रथमें जायसी के कुछ स्फुट छंदों के उद्धरण दिए हैं ।

'चित्ररेखा' का यह प्रकाशन जायसी के एक विलुप्त अध्याय का उद्घाटन करता है ।

मुझे शोध के सिलसिले में अखरावट की भी एक प्राचीन हस्तलिखित फ़ारसी प्रति मिली है । अखरावट का प्रथम प्रकाशन पं० रामचद्र शुक्ल ने उर्दू अक्षरों में मुद्रित एक प्रति के आधार पर किया था । डा० गुप्त को अखरावट की कोई

१. ना० प्र० सभा खोज-रिपोर्ट, १९४७.

२. जा० ग्रंथावली, पं० रामचंद्र शुक्ल, १९३५.

प्राचीन प्रति नहीं मिली। अतः उन्होंने भी 'वही किया' की है। (बाद में उन्हें एक प्रति मिली) डा० गुप्त ने स्वीकार किया है कि "इन ग्रंथों का पाठ असंतोषजनक है।"[१] अखरावट की दो अन्य प्रतियों की सूचना डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने 'पदमावत' की भूमिका में दी है।

'चित्ररेखा' के संपादन में दो हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है। हैदराबाद के सालारजंग-संग्रहालय की प्रति का नाम मैंने सुविधा के लिए 'प्रति क' और अहमदाबाद वाली प्रति का नाम 'प्रति ख' रख लिया है। ये दोनों प्रतियाँ लगभग समान हैं। कहीं प्रति क में एक-दो अर्द्धालियाँ अधिक हैं तो कहीं प्रति ख में एक-दो अर्द्धालियाँ अधिक हैं। इन अधिक या कम अर्द्धालियों का उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। अहमदाबादवाली प्रति फारसी लिपि में है और हैदराबाद वाली प्रति उर्दू अक्षरों में। अहमदाबाद वाली प्रति में कुछ अंतिम पृष्ठ नहीं हैं। कुछ स्थल दीमकों की कृपा के शिकार हो चुके हैं, फिर भी उसके पाठ शुद्ध हैं और लिखावट सुन्दर है।

प्राप्त प्रतियों का लिपिकाल—

सालारजंग संग्रहालय वाली चित्ररेखा की हस्तलिखित प्रतिमें उसके लिपिक ने अंतमें लिखा है —

"तम्मत तमाम शुद पोथी चित्ररेखा सिन तसनीफ़ मलिक मुहम्मद जायसी, दर अहद मुहम्मद शाह बादशाह गाजी, बतारीख दो आज दहम, सहर, रजब मुआफ़िक ११२७ फसली, मुताबिक ११३३ हिज़री बरोज सनरवार बवक्तदो-पहरी अज़क़लम, कमतरीन दयाराम भटनागर, बालमाम रशीद।

(प्रति खके अंतिम पृष्ठ गायब हैं।) इस पुष्पिका से प्रतिलिपि का समय ज्ञात होता है। इसका फोटो भी "चित्ररेखा में" दिया गया है।

०

---

१. जा० ग्रं डा० माता प्रसाद गुप्त, १९५१.

कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ

पृष्ठ

६६ अस्थिर=स्थिर (अ का आगम)
ताजन=कोडा

६७ अस्थूल=स्थूल, व्यक्तसत्ता (अ का आगम)
,, सुन=शून्य प्रकाश
,, अवोन्हा=वेनिशान, निर्गुण, निराकार (अव्यक्त सत्ता)
,, अकारू=मेघ, आकाश (परशियन डिक्शनरी स्टाइनगास)
,, मश्क=नमूना, अभ्यास, ,, ,, ,, ,,
,, बिरिख=वृक्ष

६६ मजन=मार्जन
अगिन कया=काष्ठ में अग्नि दूध में घी

७० कापरि=कर्पट, वस्त्र
कबिलास=स्वर्ग

७२ पुरान=कुरान

७३ करी=करिया, कर्णधार

७७ हीरामोनी=रतन-पदारथ,बोल
गुन=काव्य-गुण (काव्य के आठ गुण)
आगर=श्रेष्ठ
सूक=शुक्राचार्य—जो 'एक चक्षु' थे।

७८ सोरती=दीवाली, सुन्दर रति, अत्यंत सुन्दर

७६ सुखवासी=धौरहरे (धवलगृह) के अन्तर्गत कविलास नामक ऊपरी खंड का विशेष भाग।
जायसी ने पदमावत में सुखवास का उल्लेख कई बार किया

मलिक मुहम्मद जायसी कृत

"चित्ररेखा"

(मूल पाठ)

चित्ररेखा की हस्तलिखित प्रति के कुछ पृष्ठों के फोटो

← प्रति क, पृष्ठ १

प्रति क, पृष्ठ २ →

प्रति क (हैदराबाद, सालारजंग संग्रहालय की प्रति)

← प्रति क, पृष्ठ २१.

चित्ररेखा

आदि एक बरनौं सो राजा।
जाकर सबै जगत यह साजा॥
चौदह भुवन पूर कै साजू।
सहँस अठारह भूँजइ राजू॥
सरग साजि कै धरती साजे।
बरन-बरन सिष्टी उपराजे[१]॥
साजे चाँद सुरुज औ तारा।
साजे बन कहँ[२] समुद पहारा॥
जीया जोनि लाख चौरासी।
जल थल माँह कीन्ह सब बासी॥
सब कहँ दीन्हेउ भुगुति[३] निवासू।
जो जिन्ह थान सो ताकर बासू॥
सब पर मानुस सरा गोसाईं।
सबै सरा मानुस कै ताईं॥
कहौं राज बड़ ताकर, कनक छात मन्हि पाट।
राजा नवहिं सबै ओहि, धरती लाइ ललाट॥

✶

१ प्रति ख की अधिक अर्द्धाली। २ प्रति 'ख' में 'बनखँड' पाठ है।
३ प्रति ख में 'भकति' पाठ है।

साजइ माँजइ नित नौ लागा ।
अस्थिर आप और नहि रागा ।।
और जो पवन चारि दिन पिया ।
थिर नहि आछै जौं लहि जिया ।।
साजइ सब जग साज चलावा ।
औ अस पाछे ताजन लावा ।।
तिन्ह ताजन दुर जाइ न बोला ।
सरग फिरइ औ धरती डोला ।।
चाँद सुरुज कहँ गहन गरासा ।
औ मेघन कहँ बीजु तरासा ।।
नाये डोर काठ जस नाचा ।
खेल खेलाइ फेरि गहि खाँचा ।।
घरी रहँट कै चाहै पूँछा ।
दुहुन को भरै भरी को छूँछा ।।
सको तो गवन करि लेहु फिर चलिहो छूँछे हाथ ।
पथिक सोइ पहुँचत तँह, सामर जिन्हके हाथ ।।

★

उहै एक हित भा[१] निहचिन्तू ।
दूसर नाहिं नाथ ओहि अंतू ॥
ओ सुन[२] भाजो[३] अहा अचीन्हाँ ।
फुन अस्थूल भएउ जग कीन्हाँ ॥
अंघकूप मुँह[४] निक्सी जोती ।
जोतिहि तें उपना एक मोती ॥
मोती तें भया पानि अपारू ।
उठा फेन उठि गया अकारू ॥
दुसरें फेन उहै जन्नि जामा ।
भैं धरती उपजइ सब नामा ॥
भो न मस्क पल तेज न भएऊ ।
जब संसार सबै निरमएऊ ॥
बिरिख एक उपनाँ दुइ डारा ।
दुहइ तें भया अन-अन परकारा ॥
फरइ झरइ भया तरुवर, लोग कहैं फिर फूल ।
सहँस अठारह साखा, आपु भएउ रस मूल ॥

★

१. भया, प्रति क । २. ओइसन, पाठांतर । ३. जो, प्रति क में नहीं है । ४ मुख. प्रति ख ।

लिखे गढ़ें सो लिखे किन्ह काढ़े[1] ।
चले न एक पाइ रहे ठाढ़े ।।
जोवे चित तें धरइ तब चले ।
होइ दो पाइ मन्दइ औ गले ।।
सुख दुख पाप पून व्यवहारू[2] ।
होइ दोइ चलें चलेउ ससारू ।।
सेत स्याम रचना औ[3] रंगा ।
जहाँ पेड़ छाँह तिन्ह संगा ।।
धरती सरग दिवस[4] औ राती ।
दुहुँन डार साखा दुइ भाँती ।।
दुहुन जो वार एक दिसि राखे ।
सो फल पेम पिरित रस चाखे[5] ।।
आदि अंत जस होनाँ, धरइ माल लिखि पूर[6] ।
बढ़इ न काहु बढ़ाएँ, चोर जाइ नहिं चूर[7] ।।

★

१. 'लेखनि गढा सो लिखे कहूँ गाढ़े', पाठांतर । २. 'अपनौ दुक्ख, सुक्ख वेवहारू' । प्रति क । ३. ढं, प्रति ख । ४. देवस, प्रति क । ५. प्रति ख की, अधिक अर्द्धाली । ६. लख पाठांतर । ७ 'बढै न काहु वढाएँ चोरी जाइ न चूर' पाठांतर ।

आपु आप चाहसि जो देखा।
जगत साजि दरपन कै लेखा ॥
घट-घट जस दरपनु परछाईं।
नान्हें मिला दूर फुनि नाहीं ॥
हौं तो दोउ बीच की काई।
जब छूटी तब एक होइ जाई॥
हिय[1] कर दरपन मन कर मजन।
देखु आप मँह आप निरजन ॥
भया प्रगट सब खेल अपाना[2]।
अध मुरुख सो कहे जहाना ॥
अगिन-काठ घिव-खीर सो कथा।
सो जानी जो मन देइ मथा॥
भँवर भयेउ जस केतकि काँटा[3]।
सो रस पाइ होइ गुर चाँटा॥
आज जो परगट होइ मिला, मिलि न लेहु एक पास।
बहुरि अवधि कत राखउ, काल्हि मिलन के आस॥

★

---

१ हिया, प्रति क। २ अयाना, पाठांतर। ३ 'केतकि कर काँटा' प्रति क का पाठ।

का भया[1] परगट कया पखारें ।
का भया भगति भूइँ[2] सिर मारें ॥

का भया जटा भभूत चढ़ाएँ ।
का भया गेरु कापरि लाएँ ॥

का भया भेस दिगंबर छाँटे ।
का भया आपु उलटि गए काँटे[3] ॥

जो भेखहि[4] तजि मौन[5] तू गहा ।
ना बग रहैं वलु भगत बेचहा ?

पानिहि[6] रहइं मछि औ दादुर ।
नाँगे[7] नितहि रहइं फुनि गादुर ॥

पसु पंछी नाँगे[8] सब खरे ।
भसम कुम्हार रहइं नित भरे ।

वर पीपर सिर जटा न थोरे ।
अइस भेस की पावसि भोरे ॥

जब लगि विरह न होइ तन, हिये न उपजइ पेम
तब लगि हाथ न आव[9] तप, करम धरम सत नेम ॥

★

---

१. भा, प्रति ख सभी जगह प्रति ख में भा पाठ है । २. भमैं, प्रति क । ३. प्रति ख की अधिक अर्द्धाली । ४. भल प्रति, क । ५. 'तजि बैठि मौन' प्रति क । ६ पानी, प्रति क । ७ टाँगे, प्रति ख । ८. टाँगे, प्रति ख । ९. आवइ, प्रति क ।

पेम पिरीति पुरुख एक किया ।
नाउँ मुहम्मद दुहुँ जग दिया ॥
अंधकूप भया[1] अहा निरासा ।
ओनके प्रीति जोति परकासा ॥
आपनि जोति दिपै वै साँचा ।
ओनके जोति सबै परकासा ॥[2]
होइ परगट पथ जोति अनूपा ।
घट-घट पूरि भएउ सब रूपा[3] ॥
अपने ठाउँ नाउँ कै दूजा ।
अपने आप कराए पूजा ॥
जिन वह नाउँ लीन्ह औ जपा ।
सो कविलासी औ बड तपा ॥
जाके हियें पाप होइ जामाँ ।
निरमल होइ लेत मुख नामाँ ॥
उन ते भया[4] ससार सपूरन, सुनहु बैन अस्थूल ।
वे ही सब के अगुवा, हजरत[5] नबी रसूल ॥

★

---

१ भा, प्रति ख । २–३ प्रति ख की अर्धालियाँ । ४. भा, प्रति ख । ५. प्रति ख का शब्द, जो क में नहीं है।

चारि मीत तिन्ह संग निरमये ।
चारिउ वँह दुहूँ जग दिये ॥
अवाबकर सिद्दीक बखाने ।
सुनत बात सब निहचइ माने ॥
उमर अदल सो कीन्ह अमेटा ।
मुनि अनियाव मरावा बेटा ॥
उसमा लिखि सुपुरान सुनावा ।
जिन जिन सुना पंथ तिन्ह पावा ॥
अली सिघ[1] खांडेइ रन गाजी ।
जुल्फिकार दुलदुल जिन ताजी ॥
चारिहुँ चहूँ खंड भुई गहै ।
दौलत अहै सो अस्थिर रहै ॥
पाप न रहा मारि सब काड़ा ।
भया[2] उजियार धरम जग बाढा ॥
दूतें मीत अस चारो, जो मति करहि न डोल ।
पढ़हि सोइ अरथावहीं, चारि अरथ एक बोल ॥

★

---

१. छो पाठांतर। २. अलीसिंग, प्रति क। ३. भा, प्रति ख।

सैयद असरफ[1] पीर पियारा।
हौ मुरीद सेवौं तिन बारा॥
जहाँगीर चिस्ती[2] वै राजे।
समुँद माहि बोहित किन साजे॥
उर्लंघि[3+] पार दरियावै गए (गहे?)।
भए सो पार करी जिन गहे॥
धरमी हुए कई संसारा।
लाभमूल सब तें भए पारा॥
जिन्ह सेये तें दुहुँ जग तरे।
निरमल भए पाप तिन्ह हरे॥
हाजी अहमद हाजी पीरू।
दीन्ह बाँह जिन समुँद गँभीरू॥
सेख[4] कमाल जलाल दुन्यारा।
दुओ सो गुनन बहुत बहुवारा॥
अस मखदूम बोहित लइन, धरम करम कर चाल।
करिआ सेख[3] मुबारक, खेवट सेख[4] जमाल॥

१. क प्रति में 'असरफ' पाठ है। २ क प्रति में 'जहाँगीर चिस्ती' पाठ है। २+-उर्लंगि, प्रति क ३ । क प्रति में 'करिया सेख' पाठ है। ४. क प्रति में 'सेख' पाठ है

महदी गुरू सेख[1] बुरहानू ।
कालपि नगर तेहिक[2] अस्थानू ॥
मक्कइ* चौथ कहहिं जस लागा ।
जिन्ह वै छुए पापतिन्ह भागा ॥
सो मोरा गुरु तिन्ह+ हौं चेला ।
धोवा पाप पानि सिर मेला ॥
पेम पियाला पंथ लखावा ।
आपु चाखि मोहि बूँद चखावा ॥
सो मधु चढा न उतरइ कावा ।
परेउँ माँति पाएउँ फेरि आवा[3] ॥
माता धरती सो भइ पीठी ।
लागी[4] रहइ मरग सो दीठी ॥
मुये जो छार होइ यह देहा ।
जियते कस न मिलाएन्हि खेहा ॥
पेम पियाला जेहि पिया, किया पेम चित बंध ।
साँचा मारग जिन्ह लिया, तजि झूठा जग धंध ॥

★

१. प्रति क में 'शेख' पाठ है । २. 'तिन्ह का' प्रति क। ३. 'परेउँ माँति पाएउँ पहिरावा' पाठांतर प्रति ख । ४. प्रति क में लागि पाठ है । * वे चार बार मक्का गए थे, अत: अत्यन्त पुण्यात्मा कहे ग । + तहाँ या थान, प्रति क ।

मुहमद मलिक पेम मधु भोरा ।
नावँ वड़ेरा दरसन थोरा ।।

जेवँ-जेवँ वूढा तेंवँ-तेंवँ नवा ।
खुदी कई- खयाल न कवा ।।

हाथ पियाला साथ सुराही ।
पेम पीति लइ ओर निबाही ।।

वुधि खोई औ लाज गँवाई ।
अजहूं अइस घरी लरिकाईं ।।

पता न राखा दुहवइ आँता ।
मता कलालिन के रस माँता ।।

दूध पियावइ तैसउ[1] धारा ।
बालक होइ परा तिन्ह बारा ।।

रोवउँ लोटउँ चाहउँ खेला ।
भएउ अजान छार सिर मेला ।।

पेम कटोरी नाइ के, मता पियावइ दूध ।
बालक पीया[2] चाहइ, क्या मंगर क्या बूध ।।

★

---

१. थसिसो । २. ^ में 'पिया' पाठ है ।

यह संसार झूठ थिर नाही।
तरुवर पंखि तार परछाही॥
मोर मोर कइ रहा न कोई।
जो रे उवा जग अथवा सोई॥
जो जग नीक होत अवतारा।
होतइ जनम न रोवत बारा॥
प्रीति न सचमुच ऊवहि सँवरे।
जिन्ह जिव दीन्ह कीन्ह सो भँवरे॥
समुंद तरंग उठे अघ कूपा।
औ बिलाहि सब होइ-होइ रूपा॥
पानी जइस बुलबुला होई।
फूट बिलाहि मिलइ जल सोई॥
तहाँ सयानप कौन करीजै।
मुख बौराइ रोइ जिव दीजै॥
मलिक मुहम्मद पंथी, घरही माँहि उदास।
कबहूँ सँवरहि मन कै, कवहूँ टपक उवास॥

★

सुनिकै सब चौंसठ कवि लिखौ।
जिन्ह-जिन्ह सुनी स्रवन दइ सुखौ॥
अहै चित्ररेखा जु कहानी।
लिखे चित्रकरि कचन बानी॥
कचन कचन हीरा मोती।
पिरवा हार हुई तस जोती॥
जस पिरवा तस पिरइ न जाना।
पिरवा कहँ है हारि लजाना॥
कविता औ गुन आगर[1] सोई।
लै पिरई दुहुँ कहँ जिन्ह होई॥
कविता कहै गरब लै बोला।
समुँद माहि को नाव न डोला[2]॥
जिन्ह मन गरब कीन्ह सो हारा।
चाँद लजान समुँद भा खारा॥
मुहमद सायर दीन दुनि, मुख अम्रित बैनान।
बदन जइस जग चद सपूरन, सूक जइस नैनान॥

★

---

१ आकर, पाठांतर। २ दोला, प्रति म।

सुनहु कथा जस अंब्रित[1] बानी।
जहाँ चित्ररेखा वह रानी॥
नगर चन्द्रपुर उत्तम ठाऊँ।
चन्द्रभानु राजाकर नाऊँ॥
नगर अनूप इन्द्र जस छावा।
बसे गोमती तीर[2] सुहावा॥
जिन वह नगर आइ कर देखा।
तिन पावा कविलास[3] विसेखा॥
राइ रंक मनि मंदिर संवारे।
धरे कलस रचि सोनइ ढारे॥
भाँति-भाँति निसरें सब नारी।
बरन-बरन पहिरे सब सारी[4]॥
जनु कविलास[5] क अछरी आईं।
चित्रमूर्ति चित चित्र सुहाईं॥
दिन बसंत अस दीखे, रैन सोरती होय।
होहिं अनंद अस घर-घर, निसि मो जान न कोय॥

★

---

१. अमरित पाठ प्रति ग। २ 'थानु' पाठान्तर। ३. 'बसे गोमती तीर्थ सुहावा।' पाठान्तर प्रति क। ४. 'बरन बरन सब पहिरें सारी।' पाठांतर प्रति ख। ५. 'मो' (प्रति क) कविलास को कैलास भी पढ़ा जा सकता है। क और व के ऊपर एक पेंच है अतः कविलास उच्चारण ठीक नहीं जँचता, फिर भी किसी उत्तम पाठ के अभाव में हम इसे ही ठीक मानते हैं।

राजमंदिर रानी सय साता ।
उन्हहिं रूप लइ दीन्हि विधाता ।।

जानउँ सब चम्पा कइ करी ।
बैन बीन[1] आनी आछरी ।।

पुहुप मालति जानौं नव लासी ।
अति सुकुँवारि रहैं सुखबासी ।।

तहाँ रूपरेखा अति लोनी ।
लिखी चित्ररेखा तस होनी ।।

सब महँ उहै पाट परधानी ।
और सबै ओहि के तर रानी ।।

सबै नखत मनि रहहिं मिलि, मिला[2] चन्द सो भान ।
दुहुन के जोति बिरचि कै राखि रहा अवधान[3] ।।

☆

१. 'बैन-बैन' पाठांतर । २ प्रति ख में मिला शब्द है, प्रति क में नहीं । ३ अवद्दान, प्रति क ।

एक रूप आगरि मधु साजै ।
चाहइ चित्रमूर्ति उपराजै ॥
दिन दिन अवधि पूरि सो आई ।
परी चित्रमूरति धनि जाई ॥
चाँद सुरुज सों मिली सो जोती ।
दुहूँ जोति कै भई उदोती ॥
पुहुप मंडि कै साजइ[1] देहा ।
रूप रंग सों चित्र उरेहा ॥
कनक करा निरमइ बहु भारे ।
मालति फूल बास पुनि भरे[3] ॥
बाजइ अनंद उछाह बधाए ।
केतिक गुनी पोथि लइ आए[4] ॥
उत्तम घरी जनम सुभ भाखे ।
नाउँ चित्ररेखा कइ राखे ॥
माता चाँद सुरुज जिन्ह पिता ।
तिन्ह संसार रूप मन[5] जिता ॥
निहकलंक ससि उदई, जगत न सरबरि कोइ ।
नगर चंद्रपुर जनमी, कनउज रानी होइ ॥

★

---

१. 'कै' पाठ स प्रति में । २ 'पुहुप केतकि कै साजै देहा' प्रति ख का पाठ । ३. प्रति स की अधिक अर्द्धाली । ४. 'बाजइ अनद उछाह बधावा । गनक केतिक पोथी लै आवा' प्रति ख का पाठ । ५. रूप-मनि पाठांतर ।

सुबुध धाइ[1] कौं सौंपी गौरा।
धरी[2] दूइ रहि लियं हिडोरा॥
पाँच बरिस मँह भई सो बारी।
रसना अंब्रित बैन सँवारी॥

लाग पढावइ गुरू गनेसू।
भइ पंडित सुभ सुनी नरेसू॥
सतएँ वरिस आन भया भाऊ।
उपना चित्रचारि सौं चाऊ॥

इनहीं संग नवल रस खेली।
संग खेलन कौं मिली सहेली॥
नवएँ बरिस चीतमनि जिते।
हुत जो किधौं वुद पारस किते[3]॥

आकें जोन्ह किरन कन पारे।
काल दिपन तजि फूल निहारें॥
जित जोहै तित मोहइ, भूलि रहे मन सोइ[5]।
अबहिं अइस चितहरनी, धौं आगे कस होइ[6]॥

★

---

१. सुबुद धाह, प्रति क २ धर, प्रति क ३-४. ये दोनों अर्द्धालिपी प्रति स की है। प्रति क में ये नहीं हैं। ५. सोय, प्रति क। ६. होय प्रति क।

दसएं वरिस कर भई जो दसा ।
पून्यों चाँद वदन परगसा ॥
मनि माथे दीपक रस लेसा ।
भँवर भुवंग सेस भए केसा ॥
जोति सरद ससि पाई गोरी ।
नयन देखावई खजन जोरी ॥
भौंह आरि जनु घनुक सँहारे ।
वरुनि बान साधे जिन मारे[१] ॥
पलक खरग संहारे मारा ।
ऊघर अघर चाहि संहारा[२] ॥

★

१–२. प्रति ख का अधिक पाठ

सावन पहिरें राता चोला।
औ झूलन कँह रचा हिंडोला॥
तिन्ह रग बीर बहूटी झूलैं।
मिलि सकलाइ हिंडोरें झूलैं[1]॥
पाँच खभ [का][2] रचा हिं[ड]ोला।
चालिस डाँडी रची अमोला॥
बिच बिच भँवर गैल तँह लागी ?
झूलहिं गोरी परम सुभागी॥
सब रानी राजा कइ बारी।
नवल पेम रस पेम पियारी॥
सबै कली कँवल औ काची।
नाचैं[3] अभै पेम रग राची॥
नाचैं अभै भौंर रस मूलू[4]।
नाचैं अभै बिगसि है फूलू ?।
सब अबला औ बारी, सबै कुसुभी रग।
जानहु बीर बहूटियाँ, भँवर मिला नहिं सग॥

★

---

१ प्रति ख का अधिक पाट। २ कर प्रति ख। ३ नचहीं, प्रति क। ४ 'तजिहौं एहि बहोरि समूलू प्रति क। ५ बहूटी, प्रति ख।

मिली रहँसि सब चढ़ी हिडोरें।
झूलि लेहु संग बारी भौरें॥

झूलि लेहु नैहर जब[1] ताईं।
फिर कत झूलन दैहैं साईं॥

लेकै ससुर राखिहैं तहाँ।
नैहर गवन न पाइब जहाँ॥

कहँ[2] यह धूप कहाँ यह छाँहाँ।
रहब रैन दिन मंदिर माँहाँ॥

औ नित नेह हरासहिं सोई।
साध मरब आँगन कस होई॥

सासु ननद बोलत जिव लेई।
दारुन ससुर न निकरन देई॥

सासु ननद के मुँहहिं अगोरे।
रहब सुखी दोऊ कर जोरें॥

कत नैहर फिर आइब, कत ससुरें यह खेल।
आप आप कहँ होइहै, ज्यों पंखिन महँ डेल॥*

★

---

१. जित, प्रति ख। २. कहाँ प्रति क ३. प्रति ख की अधिक अर्द्धाली। * डा० माता प्रसाद गुप्त ने उपर्युक्त सात अर्द्धालियों और एक दोहे को पदमावत में प्रक्षिप्त माना है (जा० ग्रं०, पृष्ठ ५५८)। शुक्ल जी ने इसे "जायसी ग्रंथावली" (पृष्ठ २३) में स्थान दिया था। वस्तुतः ये अंश 'चित्ररेखा' के हैं।

गावहिं गीत पियहिं दइ भोगू ।
सुना न राज पर भए संजोगू ॥
चन्द्रभान वड़ दरस बोलाए ।
बर खोजन कहँ अगुवा पठाए ॥
ऊँच राज बर देखउ नीका ।
तहाँ बजाइ चढ़ावहु टीका[1] ॥
विप्र चले ताकत चहुँ ओरा[2] ।
कहँ अहइ बड़ राज केहि ओरा[3] ॥
जोरी जहाँ मिलइ बर नांही ।
तहईं पंथ खोज कहँ जाही ॥
मन इच्छा कइ[4] लाख दस, जियत मरउ जनि कोइ ।
जो लिखि धरा बिसंभर, सो फिर आन न होइ ॥

★

---

१. तहवाँ जाइ चढ़ावहु टीका, प्रति ख । २. ओरौं, प्रति क
३. कहुसि अहै बड़ राज क ओरौं प्रति क । ४. मन इंछा कइ लाख दस, प्रति क ।

ले वइ दरस चले सब बारा ।
*दुहुँ जिन्ह के माथे मनि मारा ॥
यहै ग्रस चाँद सुरुज यह जोरा ।
खोजत-खोजत गए सब खोरा ॥
देखइँ राज जगत उपराही ।
जहाँ राज तहाँ वर नाहीं ॥
सिपदेव सिहद कर' राजा ।
भाइ बरोक' तहाँ पुन बाजा ॥
सिपदेव' का' कुंवराबेटा ।
चाँद लिखा कलंक को मेटा ?
वर हम ग्रौर देखावहि लोना ।
भए ब्याह होइ सो होना ॥
वइ दरसन देखा वइ राजू ।
औ मंदिर सब सोनइ साजू ॥
पढ़ि गुन पंडित को न भुलानाँ ।
पढ़ा बेद नइ भेद न जाना ॥
भूला सहदेव औ भुई हारी ।
पढ़ा सुवा बुध' धरा मँजारी ॥
पढ़ि गुनि पंडित भूले, गुपुत न जानहि भेद ।
परगट होय न बाँचे, जइस सास्तर बेद" ॥

★

---

१. 'सिघनदेव सिहुदा ? कर' प्रति घ । २. विरोग या बरोग, प्रति क । ३. सिघनदेव प्रति क ४. कर, प्रति ख ५. भएँ, प्रति क ६. बंध, प्रति क ७. प्रति ख का अधिक दोहा । * धौं ?

मड़ुक बंध बर देखा, औ बैठारिन पाट ॥
अस्तु-अस्तु कै पुरोहित बोलहिं, टीका दीन्हि* ललाट ॥[१]

दिन दस पाँच कुसल सों पाई।
पुनि चढ़ि लगन धरावै आई॥
चद्रभान पंडित सब बोले।
पोथी-पत्र आनि सब खोले॥
कहहिं आइ भा' चाँदहिं राहू।
मीन्ह मेख होई न बियाहू॥
वै तो फिरे पढ़े जोतिखी।
अब सो कहाँ जहाँ क' न लिखी॥
कनउज नगर आदि जो कहा।
सतजुग कंचन कोटिन्ह अहा॥
फुनि त्रेता ताँबे कर भयऊ।
द्वापर होइ लोहे कर गयऊ॥
कलजुग भा' माटी कर सोई।
एक भाँति थिर रहा न कोई॥
तहँ कल्यान सिंघ' बड़ राजा।
कुल ऊपर होइ' बड़ मन साजा॥

★

१. 'भया' प्रति क। १+ को, प्रति क २. गर कपरु (पाठांतर) ३. भया, प्रति क ४. 'तहाँ कल्यान सिंह' प्रति ख। ५. धौं—या हुइँ प्रति क

कटक बहुत औ हाथिन ठाटी ।
भूँजइ सब कनउज कै पाटी ॥
सबै बात बहुत बड़ सूखी ।
एक न पूत बस बिन दूखी ॥
राज पाट धन का है, जग महँ पूत पियार ।
जो दीपक घर नाही, जानउँ जग अँधियार ॥

★

१. "मों" पाठांतर प्रति च । २. 'घर'

अइसई भाँति बहुत तप किया ।
बहुर ? बंस मदिल[1] में दिया ॥

राजमंदिल[1] पूत अवतरा ।
बाज बधाइ अनंद बहुकरा ॥

पंडित सामुद्रिक लै आए ।
राज सभा महँ जनम सुनाए ॥[2]

उत्तम घरी जनम लिया बेटा ।
पै जो दई लिखा को मेटा ॥
बतिसो लछन सुलच्छन वारा ।
करम भाग माँथें उजियारा ॥

सबै बात बहुत बड राजा ।
पै दइ आउ थोरइ बुधि[4] साजा ॥

अलप आउ जो पंडितन भाखा ।
प्रीतम कुँवर नाँउँ कै राखा ॥

अस उजियार भएउ जस भानू ।
पाँच[5] बरिस में पढा पुरानू ॥
दसएँ बरिस दसौंही आवा ।
जोरि कटक सत्रुन पर धावा ॥

★

१. मंदिर, प्रति ख २. "पडित दिनै समुंदरिक देखैं । देखि रूप सब गिनैं बिसेखैं ॥" . ति क । ३ सो, पाठान्तर, ४. बिधि पाठांतर ५. पंच, प्रति क ।

पितँ जो देखा पुत्र भा[1] राज पाट सब जोग।
सौंपा राज पुत्र कहँ, आपु पितहि सुखभोग।

★

१. 'भया'

राजकुँवर अस भा तव मूखो ।
माता पिता बहुत भए' सूखी ॥
जानहु राज जुग-जुग कर भएऊ ।
बिसरि बियाह पूत कर गएऊ ॥
जनम होति पूँछी जो कयाई ।
रहे मरब कै दिवस' अढ़ाई ॥
मूड़ मारि कै मेलहि धाहा ।
का हम कीन्ह पूत नहिं ब्याहा ॥
अथएउ सुरुज होइ अब साँझा ।
को अब भोर देइ जग माँझा ॥
दिया बुझाइ होइ अँधियारा ।
को अब लेसि करइ उजियारा ॥
कहाँ धनन्तरि पावहीं, बरि पलुहावें भोर ।
प्रीतम कुँवर चलत है, राखी बाग मरोर ॥

★

१. प्रति क में भए नहीं है। २. देवस, प्रति क। ३. पलुहवाइ? प्रति क।

कुँवर जो राज पाट हा भोजू।
आवा मँदिर[1] बुझइ कस रोजू॥
मै सब* राज देसन कर जीता[2]।
तुम कस रोवहु[3] माता पीता[+]॥
जब लगि हुईं[4] साँस तन मोरे।
सेवा करौं ठाढ[5] कर जोरे॥
तहँ सेवक कै करम सो भाया।
मातु पिता कँ सेवा पाया॥
हौं तो सेव करौं निरदोखू।
बहु सो मोह[6] परा कस दोखू॥
केहि[7] कारन अस रोवहु[8], का बियापि तन आप।
मात पिता के रोवत सुनि, पूत कही अस बात॥

★

१. 'आउ अमंद' पाठांतर प्रति ख २. जिता प्रति क ३. 'रोहउ' प्रति क। + पिता प्रति क ४. 'रहै' प्रति ख। ५. 'साधु' प्रति ए। ६. मोहि प्रति ख ७. किन्ह, प्रति क ८. रोहउ, प्रति क। * प्रति क।

माता पिता पाइ लैं परे ।
तुम सेठव[1] सरवन ओतरे ॥
तुम सेठव जस भागीरथी ।
राज कीन्ह भारथ भारथी ॥
तुम कों कौनिहूं न लागैं दोखू ।
दोखहि हम कहें जिन कहें मोखू ॥
तोरे सुख हम सुख भा भोरा ।
बिसरि बियाह पूत गया तोरा ॥
बीस बरीस[2] आउ तोरि[3] अहै ।
सो अब देवस अढ़ाई रहै ॥
मनहिं[4] कलापि रोवहि हिय फाटा ।
भरी नाउ[5] को लावइ घाटा ॥
टूट बहे गढ़ परबत, बूड़ि बहे संसार ।
प्रीतम कुंवर चलत, उन्ह याह तुरग तैयार[6] ?

★

---

१. सेवक, प्रति ख । २. बरिस, प्रति क । ३. तोरी, पाठांतर । ४. मनै । ५. मइ नाउ, प्रति क । ६. 'अंधियारउ तुरग तैयार' पाठांतर ।

काल केरि सुठि कठिन अवाई ।
सुनतहिं कुँवर गएउ मुरझाई ॥
वल गियान वूधि भइ तेता ?
राता वदन गएउ होइ सेता ॥

भएँ को चेत कहा क्या रोएँ ।
जो विधि लिखा सो जाइ न धोएँ ॥
पुर कह सोइ जो धर्महिं धरै ।
मरती वार सत छाड़ैं न मरै ॥
जो अस लिखा नवहुँ अस ताही'[३] ।
काल का आस मोर वन माँहीं ॥
महहिं भड़ाई देवस कहँ, क्या अब मिलन ? करेउँ ।
तुरय देहु तस मो कहँ, हौं कासी गति लेहुँ ॥

★

---

२. महा, प्रति क। ३. "...तो हौं अस ताहीं।" क प्रति।

हंसराज हंसाजह रंगू ।
छोरि सो मांगा वेग तुरंगू ॥
पाहन तलक हंस कै करा ।
पियें दूध आछं भुसधरा ॥
सेत पाट छवों पानि पखारा ।
ओहि सर जगत न और तुखारा ॥
बीस लाख देइ लीन्ह अमोला ।
पवन पाव[2] रथ उड़न खटोला ॥
सो पलान कै मांगा वेगी ।
मांत पिता कहं सौंपी नेगी ॥
चढ़ा तुरंगम औ चला, किया[3] जग कै परतीति ।
पलक ओट फुन होतइं, गा[4] सपना सा बीति ।

★

१. पिर्थं न दूध माघै मुई घरा, पाठांतर। २. पौन पाठान्तर, ३. क्या, पाठांतर। ४. गया, प्रति क।

काल का गहा कोट कै बारा।
चला चाँद रोवहिं सब तारा॥
जस दसरथ[1] श्रीराम बिछोहे।
अंधा अंधी सरवन मोहे॥
जत खन चाँदहि लागइ राहू।
नखत न रैन गवावइँ काहू[2]॥
माता पिता मुये हिय फाटी।
भै उजार कनउज कै पाटी॥
हियैं परी कनउज कै पाटी।
केतिक भूँजि मुये एहि माटी॥

केतिक[4] भूँजि असमर भयें, अस्थिर रहा न कोइ।
तनहिं छूटे जीवन कहँ, मोर-मोर कै होइ॥

★

---

१. हम रथ? २. ततखन? नीरँकों मनँगाहू॥ ४. बैसिग पाठांतर।

नगर चंद्रपुर होइ उछाहू।
कुंवरि चित्ररेखा कौ व्याहू॥
प्रीतमकुंवर तोलानत[1] आए।
लागी धूप छाँह वर पाए॥
भई दुपहरी लागी घामू।
बैठेउ उतरि कीन्ह बिसरामू॥
ऊपर काल चारि मुख ठाढ़ा।
ऊंघत ही मे[2] चाह जिउ काढ़ा॥
अवसं नान्हे कह नहिं सूजा?
देखै घरी आइ कब पूजा॥
जिन्हके सीस काल अस होई।
क्या न भरम सुख सोवइ सोई॥
मरे मीन जल धरती, पिण्टि न दिण्टि करेइ।
तब जानै जब पछी, तरफि-तरफि जिव देइ॥

★

१. मेल, प्रति क २. का, प्रति ख।

सिंगदेव* सुठि डागु बजावै ।
कुवरा पूत वियाहन आवै ।।
वर जो देखावा लिहा बरोका ।
सो विधि चाह गएउ सिवलोका[1] ।।
उतरा आइ ओही वर पाँहाँ ।
राजकुँवर हौ जिन्ह वर छाँहाँ ।।
देखइ कहा कुँवर हइ लेटा ।
काहू बड़े राजकर बेटा ।।
काल कँ डर[2] मुरुछा कव आई ।
तवहू मुख कँ जोति न जाई ।।
सिंघदेव* देखा अस चंदू ।
देखि रूप मन भएउ अनंदू ।।
लागी पवन डोलावै, एहि कुँवर के पास ।
पानि[3] पीन्हि मँह पावा, जानौं मरत पियास ।।

★

* सिंघनदेव, प्रति क । १. शिवलोका, प्रति क २. दर, प्रति क ३. पानी प्रति क ।

सोवत कुँवर[1] जो नैन पसारा ।
उठा चौंकि लागे बड़ बारा ॥
कहेसि[2] वेगि अब पाऊं कासी ।
जहं जे मीचु सो कत सुखवासी ॥
जबहि कुँवर भा चाह बटाऊ ।
सिघदेव* उन्ह टेके[1] पाऊ ॥
पूंछसि जात कुरइ औ नाऊं ।
कस उदास जस जीव न ठाँऊं ॥
सुनिके बात बिपति अस भारी ।
सिघदेव* बिनती उन सारी ॥
हम एहि नगर बियाहन आए ।
अहा करम तुम अस वर पाए ॥
वर कुवरा हइ मोरइं, तुम तें होइ न ब्याह ।
काल्हि चलो कासी कों, के निसि आज बियाह ॥

★

---

१. कुँवर, प्रति ख । २. कहम, प्रति क । * सिघनदेव, प्रति क ।

सिवदेव[1] उठि बीरा दीन्हा ।
सगुन बाँधि कै वर वइ[2] कीन्हा ॥
सब कपरे दुख भरे उतारे ।
कंकन बाँधि चित्र सब सारे ॥
दई इहाँ कपरे पहिराए ।
निकसे कुँवर मरइ भल आए ॥
कासी चले ले आग अदाहू ।
पीछहिं लागे होइ बियाहू ॥
सुरग नरक[3] अहई सग लागे ।
दहुँ[4] कहँ पथ चलावइ आगे ॥
चन्द्रभानु के अगुवा आए ।
दूलह देखि बहुत सुख पाए ॥
औ बजाइ लेइ चले बराती ।
दूलह भएउ काल के राती ॥

वहाँ चलाई मरन कौं, पीछहिं[5] पवरी पेठ ।
परनारी के नायक, बनज पराएँ सेठ ॥

★

१. सिघनदेव, प्रति क २. वरखा प्रति क । ३ नगर या शहर, प्रति क । ४. 'धौं कहँ' पाठांतर । ५ बीचहिं, प्रति क ।

जाकौं चाहइ देहि न साईं ।
जो नहिं लेइ देइ बरमाईं ॥

मंदर तूर बजावत ऊँचे ।
चन्द्रभान के बार पहूँचे ॥

आइन[1] सखियन देखि बराता ।
कहिन[1] चित्ररेखा सौं बाता ॥

आज कुँवरि तुम आवइ पीऊ ।
देखि लेहु फुन डरइ न जीऊ ॥

घरी हम रात दिन गने ।
चाहइं आज जोरि है बने ?

सुनत बात सरवन अस पीऊ ।
भई मुरछित रामा[3] तजि जीऊ ॥

सखिन कहा यह धनि सुकुँवारा ।
मदन तरास गई बिकरारा ॥

लै पौढ़ारी सेज सुपेती ।
घरी चार अस रही अचेती ॥

फुन भए चेत सोवत अस जागी ।
सखिन सहेलिन बूझ लागी ॥

जिन सिगार मन मानहु, आज करब तुम छोह ।
तुम केसँ[4] साजहु, औ सनमुख रन होह ॥

★

१. आईं, पाठांतर । २. कहइँ, पाठांतर । ३. रामैं, प्रति ख ।
४. कइसँ, पाठांतर ।

कहेसि सखिन तुम कहहु बियाहू ।
मोकँह जइस चाँद कहँ राहू ॥
जस तुम कहा कि आवइ नाहू[1] ।
सुनत जीव लिया हर काहू[2] ॥
जानौं कहँ मुठि लेहि जिव काढ़ी ।
औ तेइ कन्ह सुरग पर ठाढ़ी ॥
दीन्ह सिधौरा मोरइँ हाथा ।
कहँ बेगि चलउ पिउ साथा ॥
कहाँ सबै राजा औ राऊ ।
इन्दर सभा गए कँह न्याऊ ॥
इन्दर कहा अइस जनि डाँड़हु ।
अब की बार और दा[3] छाँड़हु ॥
भा बियाह जस बूझी, फुन बहुरा सब कोइ ।
सात खंड धौराहर, तेइ पौढाईं दोइ ॥

★

---

१. नाँहूँ, प्रति क २. काँहूँ प्रति क ३. वइ पाठांतर

प्रीतम कुँवर काल कर घेरा ।
का कर चैन भोग किन्ह केरा ॥
आज सेज सुख सोई वासा ।
कालिह सुरग चढ़ि नलव अकासा ॥
तहँ जीवन कहँ मरन निमारों ।
पर धन लाइ पैर तर हारों ॥
पौढ़त दूलह जो दइ पीठी ।
फिर फुनि उलटि नयीनहिं दीठी ? ।
पीठि लागि दुलहन गइ सोई ।
पिछला पहर लाग फुनि होई ॥
अंचल पट्ट कुँवरि का कीन्हा ।
लिखा बेगि सो आपन चीन्हाँ ॥
हौं कनउज राजा[1] कर बेटा ।
जो विधि लिखा सो जाइ न मेटा ॥
वीस बरीस[2] आउ हुत मोरी ।
पूजी आइ को देइ बहोरी ॥
सहजें चला जात हा कासी ।
पहुँचा आइ लगन का रासी ॥
सिंघदेव' कँह आन वियाहा ।
ना जानउँ तुम्ह कहँ का लाहा ॥
कालिह दोपहरी भीतर, मइँ कासी गति मोख ।
तुम कँह भयो इतना सुरन, मो कहँ इतना दोख ॥

★

१. राज कर प्रति क २. बरिख सिघनदेव, प्रति क ।

लिखि कर[1] चला तुरगम हाँका ।
घासी मोख लेन गति ताका ॥
होत विहान विहात तराई ।
सखिन चित्ररेखा पँह आई ॥
का देखे धनि निसि ही सूनी ।
तैसे सबै सिंगार अछूती ॥
कहिन जगाइ उठउ भा भोरा[2] ।
कहाँ सो कंत भएउ जिन चोरा ॥
सेज फूल तस जइस बिछाए ।
तैसे बिगसि अंग नहि लाए ॥
तुम्हँ पंडित औ चतुर सयानी ।
किन्ह औगुन पिय सज न मानी ॥
आज रात मानउँ अलच्छन अहे ।
सोतइ चला अकेली रहे ॥
रचि विरंचि न जानो, कहउ सो हम सो बात ।
कस[1] अस रैन विहानी मिलि चकई सघात ?

★

---

१. प्रति क में 'कर' शब्द नहीं है–'लिखि' या 'लेखि चला' पाठ है।
२. कहसि जगाइ उठहु भया भोरा, प्रति क। प्रति ख में अस है।
(प्रति क में 'कैसन रैन' पाठ है ?)

प्रीतम कुंवर काम कर घेरा।
का कर चैन भोग किन्ह बेरा ॥
आज सेज सुख सोई बासा।
कालिह सुरग चढ़ि चलब अकासा ॥
तहं जीवन कहं मरन निमारौं।
पर धन लाइ पैर तर हारौं ॥
पौढ़त दूलह जो दइ पीठी।
फिर फुनि उलटि नगीनहिं दीठी ?।
पीठि लागि दुलहन गइ सोई।
पिछला पहर लाग फुनि होई ॥
अंचल पट्ट कुंवरि का कीन्हा।
लिखा बेगि सो आपन चीन्हा ॥
हौं कनउज राजा[1] कर बेटा।
जो विधि लिखा सो जाइ न मेटा ॥
बीस बरीस[2] आउ हुत मोरी।
पूजी आइ को देइ बहोरी ॥
सहज चला जात हा कासी।
पहुंचा आइ लगन का रासी ॥
सिधदेव[2] कंह आन बियाहा।
ना जानउं तुम्ह बहं का लाहा ॥
कालिह दोपहरी भीतर, मइं कासी गति मोख।
तुम कंह भयो इतना सुरन, मो कहं इतना दोख ॥

★

१. राज कर प्रति क २. बरिख मिधनदेव, प्रति क।

कहि के जाइ सिघोरा काढ़ी ।
सेंदुर मेलि आइ भइ ठाढ़ी ॥
अंचल गाँठि जो जोरा फेंटा ।
लाएसि कंत[1] जानि पिउ भेंटा ॥
कंत जाइ कासी गति मानी ।
मो कहँ देइ फेंटा सनमानी ॥
अब एहि फेंट तस जीवन लाऊँ ।
गहें फेंट कबिलास[2] सिधाऊँ ॥
निठुर नाह अस बूझै नाही ।
चलत बार फेंट[3] गहि बाही ॥
जो तुम पिउ हौं अइस बिसारी ।
आपुहि जारि मिलौं तो नारी ॥
कंत न पूँछइ जो इहाँ, छार होउँ जरि अंग ।
मो कहँ सो पूँछइ होइ, उहाँ कौन कहुं संग[4] ॥

★

१. कंथ, प्रति क २. कबिलास शब्द के ब के ऊपर एक पेश है (प्रति क) ३. 'न एन्ह' पाठांतर ४. 'उहाँ गवन न हुँ संग ।' पाठांतर

कहेसि सखी हौं कछू न जानौं ।
रचि-विरचो कहा बखानो ॥
दरस न पाएउँ पाएउँ पीठी ।
रूप न जानउँ धौं कँह दीठी ॥
कहत जो भई बात है पीठी ।
अचल लिखा सो परि गया दीठी ॥
लागी पढ़न लाइके नैनाँ ।
जस कुछ लिखो भरथ कै बैनाँ ॥
कहत सखी हउँ कहत जो बाता ।
देखउँ अब अचल पढ़ि राता ॥
कुँवर गयउ चलि सहजें कासी ।
सेवा करउँ अछरि होइ दासी ॥
हौं किमि अजहूँ तजि एहि जोरी ।
ब्याहे साथ भली गति मोरी ॥
गहौं तपा कँह सर रज[१], देहि बेगि मोहि आगि ।
जाइ मिलौं स्वामी कौं, चलौं सुरग सँग लागि ॥

★

---

१. 'कहउँ पिता कँह सर रच' प्रति क ।

सुनिकै राजकुँवर मुख हेरा ।
कहु हम चिरंजीव किन्ह फेरा ।।

हौं सर चढ़ा जरन कै ताईं ।
को चिरजीवो* करै गोसाईं ।।

जो जग जीवन पाइव मोला ।
देत न खटकत नहि कोउ भोला ।।[2]

तुम्ह बड़ पिता सो भइं मुख दीसा ।
मरत दीन्ह तुम जियन[3] असीसा ।।

को अब गुनी गरुरवा[4] आवा ।
मनक कि मरा जो फेरि जियावा ।।

दसईं अवस्था आई, औ तेरह[5] बनै मीच ।
कहाँ[1] अस गवन गोसाईं, बैठ करन जिव बीच ।।

★

१. कहँ, प्रति क २. 'जग जीवन कै मानत मोला । देत न कहा नखत के तोला' प्रति ख । ३. 'जियन' या 'जियत' पाठांतर ४. 'को अव कौने गरुरवा आवा' पाठांतर । विशेष–प्रति ख में तीसरी और चौथी अर्द्धाली के बीच एक अर्द्धाली है दूसरी और तीसरी अर्द्धाली के बीच एक अर्द्धाली है, किन्तु वे अपठ्य हैं । प्रति क में ऊपर दी हुई पाँच अर्द्धालियाँ है । ५. तेरहैं प्रति क । * 'चिरंजीव' प्रति क ।

प्रीतम कुँवर चढ़े गज बाजा ।
बाजी नाद गगन भर' गाजा ॥
कीन्हेंसि हाथ दान पर ऊँचा ।
नगा सबा सब आन पहुँचा ॥
जग महँ दान ऊँच कर करा ।
सुनि कै करन क माथा' टरा ॥
सुनें दान गिड़न मन बाढ़ा ।
माह बियाग तहाँ भा ठाढ़ा ॥
सबही दान दीन्ह जिन्ह लाईं ।
कहेंसि बियासहि लेहु गोसाईं ॥
दीन दान भरि मूँठी, कया बियासहि छोड़ ।
चिरंजीव मुख निकसा, सो चिरंजीव तुम होहु ॥

★

---

१. कर माथ, प्रति क

बहुरि व्यास मन समुझा सोई ।
गया[1] मुख निकसि सो आन न होई ॥
तोकों लिखा अहा अस फेरू ।
हौं बियास तासों भया मेरू ।
औ मुख अस करतार पढ़ावा ।
चिरंजीव कहि[2] अवधि बढ़ावा ॥
उतर कुँवर एहि सर सों, घर को सकल सिधाव ।
नव औतार भयो तोहि, जाइ बधाइ बजाव ॥
सुनि कै कुँवर व्यास का नाऊँ ।
अंग-अंग बिगसा सब ठाऊँ ॥
जीवन आपु* होतहिं सुधि पाई ।
नारि चित्ररेखा चित आई ॥
जो वह जरे धरम कुल लाजा ।
मोर जीवन आवै केहि काजा ॥
उतरा बेगि सर हौन तें, जानों जनमा माइ ।
चढ़ा तुरंगम धावा, गहि बियास कै पाइ॥

★

१. 'गा' प्रति ख २. कइ, प्रति क।

कुँवरि चित्ररेखा सर चढ़ी ।
अचल लिखा करइ सो पढ़ी ॥
त्य सो घरी चलि आवै हाथा ।
लाँवौं आगि हवन पिउ साथा[1] ॥
जित खन घरी सो पूजी आई ।
चाहै आगि आन सर लाई ॥
तिन्ह खन वरि[+] गए नगर अहाना ।
प्रीतम कुँवर सो आइ तोलाना ॥
दिष्टि चित्ररेखा सो भई ।
हाथ कै आगि हाथ रहि गई ॥
सीस ढाँपि मन लाज पियारी ।
उतरी सरि तैं मँदिर सिधारी ॥
सुनि कै बाजन बाजत भागे ।
फिर सो बधाए बाजन लागे ॥
दई आन उपराजा, सोग माँह सुख भोग ।
अवस[+] तै मिलै बिछोही, जिन्ह हिय होइ वियोग ॥

★

१. 'लार्वौं आगि होउँ पिउ साथा' पाठांतर प्रति क * तेहि खन परि, पाठांतर । * 'अइस तै' पाठांतर

वहुरि व्यास मन समुझा सोई ।
गया[1] मुख निकसि सो आन न होई ॥
तोकौं लिखा ब्रह्मा अस फेरू ।
हौ वियास तासों भया मेरू ।
श्री मुख अस करतार कढ़ावा ।
चिरंजीव कहि[2] अवधि वढावा ॥
उतर कुंवर एहि सर सों, घर को सकल सिधाव ।
नव औतार भयो तोहि, जाइ वधाइ वजाव ॥
सुनि कै कुंवर व्यास का नाऊं ।
अंग-अंग विगसा सब ठाऊं ॥
जीवन आपु+ होतहि सुधि पाई ।
नारि चित्ररेखा चित आई ॥
जो वह जरै धरम कुल लाजा ।
मोर जीवन आवै केहि[2] काजा ॥
उतरा वेगि सर हौन तें, जानों जनमा माइ ।
चढ़ा तुरंगम धावा, गहि वियास के पाइ॥

:

★

१. 'गा' प्रति ख २. कइ, प्रति क । +आउ पाठांतर ।

कुँवरि चित्ररेखा सर चढी।
अंचल लिखा करइ सो पढी॥

कब सो घरी चलि आवै हाथा।
लाँवौं आगि हवन पिउ साथा[1]॥

जित खन घरी सो पूजी आई।
चाहुँ आगि आन सर लाई॥

तिन्ह खन बरि[+] गए नगर अहाना।
प्रीतम कुँवर सो आइ तोलाना॥

दिप्टि चित्ररेखा सों भई।
हाथ कै आगि हाथ रहि गई॥

सीस ढाँपि मन लाज पियारी।
उतरी सरि तैं मँदिर सिधारी॥

सुनि कै बाजन बाजत भागे।
फिर सौ बधाए बाजन लागे॥

दई आन उपराजा, सोग माँह सुख भोग।
अवस[+] ते मिलें बिछोही, जिन्ह हिय होइ वियोग॥

★

१. 'लानौं आगि होउँ पिउ साथा' पाठांतर प्रति क * तेहिं खन परि, पाठांतर। * 'अइस तें' पाठांतर